स्मृतियों के झरोखे से

छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द भावधारा के प्रवर्तक

स्वामी आत्मानन्द

डॉ. सत्यभामा आडिल

स्मृतियों के झरोखे से

छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द भावधारा के प्रवर्तक

स्वामी आत्मानन्द

•

डॉ. सत्यभामा आड़िल

सर्वप्रिय प्रकाशन

दिल्ली-रायपुर

छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द भावधारा के प्रवर्तक
स्वामी आत्मानन्द

डॉ. सत्यभामा आड़िल

ISBN- 978-93-91007-96-6

●

प्रकाशक
सर्वप्रिय प्रकाशन
1569, प्रथम मंजिल, चर्च रोड,
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006
मो. 94253-58748
e-mail : sarvapriyaprakashan@gmail.com

आवरण सज्जा : कन्हैया
प्रथम संस्करण : 2021
मूल्य : 100.00 रुपये
कॉपी राइट : लेखक

CHHATTISGARH ME VIVEKANAND BHAVDHARA KE PRAVARTAK SWAMI ATMANAND BY : DR. SATYABHAMA AUDIL

●

Published by
Sarvpriya Prakashan
1569, First Floor Church Road,
Kashmiri Gate, Delhi-110006

Raipur Office
Changora Bhatha, Road
Behind Imrald Hotel , P.S. City -492013
Mob.: 9425358748 e-mail : sarvapriyaprakashan@gmail.com
First Edition : 2021
Price: Rs.100.00

अनुक्रम

1	छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द ० भावधारा के प्रवर्तक – स्वामी आत्मानन्द ० जीवन–वृत्त	5
2	आत्मानन्द जी के व्यक्तित्व विभिन्न आयाम	16
3	स्वामी जी का रीवा प्रवास	18
4	रींवा में व्याख्यान–पहला– 'आत्मोन्नति का मार्ग व जीवन जीने की कला'	22
5	रींवा में व्याख्यान–दूसरा–'जीवन का लक्ष्य और स्वधर्म'	24
6	रींवा में व्याख्यान–तीसरा–'भारत और पश्चिम में नारी की स्थिति और जीवन मूल्य'	28
7.	रींवा में व्याख्यान चौथा–'धर्म और विज्ञान'	32
8.	व्याख्यान– पांचवा – सीहोर में स्वामी आत्मानंद जी का व्याख्यान	35
9.	प्रेरक स्वामी आत्मानन्द जी 'लोकहित के लिए निष्काम कर्म'	41
10.	आत्मानन्दजी से प्रथम भेंट	43
11.	माता और पुत्र–'मृत्यु की भविष्यवाणी'	46
12.	अमृतसर के अध्यात्म सम्मेलन में स्वामी आत्मानन्द	48
13.	विनोदी स्वभाव के अनेक रंग	49
14.	आश्रम से मेरे घर संसार तक – 1	51
15.	आश्रम से मेरे घर संसार तक – 2	

(2 अक्टूबर की शाम प्रार्थना सभा के बाद) 54
16. आश्रम से मेरे घर संसार तक –3 57
17. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 4 59
18. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 5 61
19. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 6 63
20. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 7 65
21. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 8 67
22. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 9 69
23. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 10 71
24. आश्रम से मेरे घर संसार तक – 11 73
25. स्वामी आत्मानन्द्र–जीवन प्रवाह–
जन्म से मोक्ष तक की सीढियां 76
26. श्रद्धांजलि 79
27. स्वामी आत्मानन्द जी की स्मृति में शिक्षण संस्थाओं की सूची 80

एक

छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द भावधारा के प्रवर्तक स्वामी आत्मानन्द

भारत के मध्य भाग में बसा हुआ भूमि भाग, छत्तीसगढ़ प्रदेश के नाम से जाना जाता है। यह कभी मध्यप्रदेश का अंग हुआ करता था। एक नवम्बर 2000 में छत्तीसगढ़ अलग होकर नया राज्य बना। साथ में उत्तरप्रदेश से उत्तराखंड व बिहार से झारखंड भी अलग हुआ। अलग होने से बहुत पूर्व ही छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द भावधारा की आध्यामिक नदी बहने लगी थी। इस भावधारा के प्रवर्तक थे स्वामी आत्मानन्द!

छत्तीसगढ़ की वर्तमान राजधानी रायपुर में विवेकानन्द भावधारा का स्रोत फूटा। चूंकि अपने जीवन के कुछ वर्ष, बाल्यकाल में स्वामी विवेकानन्द ने रायपुर में व्यतीत किया था---अतः इसे केंद्र में रखकर, आध्यात्मिक अवगाहन का पुनीत कार्य प्रारंभ किया गया।

स्वामी आत्मानन्द छत्तीसगढ़ के मूल निवासी थे। उनके पूर्वज भी यहीं के थे। रायपुर जिला व शहर, स्वामी आत्मानन्द के परिवार का आवासीय क्षेत्र रहा। उनका शालेय अध्ययन भी रायपुर में हुआ। स्वामी विवेकानन्द व स्वामी आत्मानन्द दोनों का जुड़ाव रायपुर से रहा--यह एक संयोग ही माना जायेगा।

यह भूमि इसीलिए विवेकानन्द भावधारा के पुनर्जागरण का केंद्र बनी।

स्वामी आत्मानन्द आध्यात्म व विज्ञान के संगम थे! धर्म का वैज्ञानिक अध्ययन मनन करते हुए अपनी मेधा को, मन मस्तिष्क को, स्वामी विवेकानन्द के मिशन से जोड़ दिया।

स्वामी आत्मानन्द वास्तव में ज्ञान, भक्ति और कर्म के त्रिवेणी संगम थे। प्रसिद्ध मानस विशेषज्ञ रामकिंकरजी यही कहा करते थे—

''परहित सरसि धर्म नहीं भाई,
पर पीड़ा सम नहीं अघ माई।''

यह आत्मानन्दजी के जीवन का सूत्र था।

सामान्य रूप से देखने में आता है कि एक वैरागी सन्त को, दूसरे गृहस्थ सन्त से ईर्ष्या होती है, परन्तु आत्मानन्दजी ऐसे सन्त थे, जो दूसरे सन्तों का सम्मान करते थे। विशेष रूप से जब भी रायपुर के विवेकानन्द आश्रम में सबके साथ श्रद्धाभिभूत होते हुए, विनय भाव से, श्रोता वर्ग में जमीन पर बैठकर ही अन्य संत का प्रवचन सुनते थे।

अर्थात् आत्मानन्दजी पूर्ण रूप से विकार रहित ज्ञानी, भक्त व कर्मयोगी थे।

अभिमानशून्य आत्मानन्दजी, सदैव दूसरों के गुण ढूंढ़ा करते थे, अपने गुणों का बखान कभी नहीं करते थे।

आध्यात्मिक संस्कार उन्हें बचपन में ही मिले थे। युवावस्था में विवेकानन्दजी के व्यावहारिक वेदांत ज्ञान से प्रभावित हुए व उसी भावधारा में बह गए। ''व्यावहारिक वेदांत''-अर्थात्-

''प्रतिमा रखकर ईश्वर की पूजा की जा सकती है और जीवंत मनुष्य की पूजा नहीं हो सकती।''

आत्मानन्दजी इसी विचार से प्रेरित हुए कि मनुष्य ईश्वर का ही रूप है। मनुष्य की सेवा ही साक्षात ईश्वर की सेवा है। मनुष्य के लिए जो कुछ भी किया जाता है, वह ईश्वर को समर्पित हो जाता है। इसी विश्वास के साथ आत्मानन्दजी ने सारा जीवन पीड़ित मानव की सेवा में लगा दिया।

जीवन वृत्त के साथ, स्वामी जी के साथ बिताए क्षणों को क्रमबद्ध रूप से, प्रेरक स्मृति के रूप में, इस पुस्तक में संकलित किया है मैंने! किस तरह वे ''आश्रम से मेरे घर-संसार तक'' जुड़े रहे, निस्पृह, निर्विकार, निर्लिप्त होते हुए भी नितांत अपने लगते थे । संसार में उनका सुंदर अभिनय विस्मृत नहीं किया जा सकता । सारे जीवन इस जगत् में अभिनय ही तो करते हैं । पर जीव का वह अभिनय मूल रूप से परमब्रह्म से जुड़ा रहे- वही धन्य हो जाता है । मनुष्य में ईश्वरत्व की खोज ही सच्ची साधना है। स्वामी आत्मानन्द जी ने मनुष्य में ईश्वरत्व ढूंढ कर आनंद का अनुभव किया ।

जीवन वृत्त

आइए, हम आत्मानन्दजी के जीवन वृत्त को जानें!

उनकी माता का नाम भाग्यवती देवी एवं पिता का नाम धनीराम वर्मा था। धनीरामजी रायपुर जिले के अंतर्गत बरबन्दा ग्राम में रहते थे। वे शाला में शिक्षक थे। आत्मानन्दजी का जन्म 6 अक्टूबर 1929 ई. को प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में, बरबन्दा ग्राम में हुआ था।

माता भाग्यवती अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति की नारी थीं। वे बचपन से ही भगवान शिव की पूजा करती थीं। 5 अक्टूबर 1929 की रात में उनके जीवन में एक अलौकिक घटना घटी।

रात्रि में शिवजी प्रसन्नमुद्रा में खड़े दिखाई दिए। क्षण भर बाद वे शिशु के रूप में भाग्यवतीजी की गोद में बैठ गए। वे शिधु को दूध पिलाने लगीं उनकी नींद खुल गई, सुबह होने वाली थी। प्रसव पीड़ा होने लगी और ब्रह्म मुहूर्त में ही उन्होंने एक शिशु को जन्म दिया। ग्रह नक्षत्र, व लग्न देखकर शिशु का नाम रामेश्वर रखा गया। ''राम के ईष्ट शिवशंकर--यानी रामेश्वर''!

माता पिता धार्मिक थे, अतः डेढ़ वर्ष की उम्र से ही राम नाम संकीर्तन करने लगा बालक। चार वर्ष की आयु में हारमोनियम बजाना सीख गये व भजन गाने लगा। चार वर्ष की आयु में ही बालक स्कूल जाने लगा। स्कूल में उसका नाम तुलेंद्र लिखाया गया।

मांढर के स्कूल में, धनीरामजी शिक्षक थे। उसी स्कूल में बालक तुलेंद्र भी पढ़ने जाया करता था।

धनीरामजी सामाजिक कार्य भी करते थे। साथ ही वे हरिद्वार, ऋषिकेश, अयोध्या आदि तीर्थस्थानों की यात्रा पर भी जाया करते थे। इन सबका प्रभाव बालक तुलेंद्र पर पड़ता गया।

धनीरामजी सन 1938 में वर्धा गए। गाँधीजी के बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय में उनका चयन हो गया था। यहां देश भर से चुने शिक्षक बुलाये गए थे। धनीरामजी का पूरा परिवार वर्धा चला गया था। तुलेंद्र को वर्धा के

नवभारत विद्यालय में कक्षा 6वीं में भर्ती करा दिया गया।

हर रविवार को अवकाश के दिन धनीरामजी तुलेंद्र को लेकर महात्मा गांधी के सेवाग्राम आश्रम में चले जाते थे। वहां से प्रार्थना सभा में शामिल होते। प्रार्थना के बाद गाँधीजी बच्चों को कहानियां सुनाते थे। गांधीजी तुलेंद्र को बहुत प्यार करते थे। तुलेंद्र कभी गाँधीजी की उंगली पकड़कर, कभी उनकी छड़ी का अगला-पिछला भाग पकड़ कर, चलने लगते थे। सन् 1940 में प्रशिक्षण के दो वर्ष पूरे हो गए। धनीरामजी बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के संचालक के रूप में रायपुर आ गए। तुलेंद्र को रायपुर के सेंटपॉल्स स्कूल में 7 वीं कक्षा में भर्ती किया गया।

''करो या मरो'' का नारा गूंजने लगा। गाँधीजी गिरफ्तार हो गए। सत्याग्रहियों के साथ धनीरामजी भी जेल चले गए। तुलेन्द्र 9वीं कक्षा में थे। मां भाग्यवती देवी के धैर्य पूर्ण सहयोग से कठिन समय बीत गया। सन् 1943 में धनीरामजी जेल से रिहा हुए, तो उनकी सरकारी नौकरी समाप्त हो गयी थी। आर्थिक संकट का कठिन समय था। रायपुर के सत्तीबाजार में उन्होंने एक छोटी सी दुकान खोली---नई पुरानी पुस्तकें व स्टेशनरी की। आज भी वह दुकान चल रही है। इसी दुकान से पूरे घर का खर्च चलता था। समस्त कठिनाईयों को झेलते हुए तुलेंद्र चार विषयों में दक्षता के साथ मैट्रिक की परीक्षा, 1945 में, प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए।

रायपुर में विज्ञान की उच्चशिक्षा के लिए, उन दिनों महाविद्यालय की व्यवस्था नहीं थी। इस कारण तुलेंद्र को आगे अध्ययन के लिए नागपुर जाना पड़ा। वहाँ महाविद्यालय में प्रवेश मिल गया, परन्तु छात्रावास में जगह नहीं मिली। धनीरामजी के एक मित्र के माध्यम से रामकृष्ण आश्रम के विद्यार्थी भवन में प्रवेश मिल गया। एक वर्ष बाद वे छात्रावास चले गए। वह एक वर्ष उनके लिए महत्वपूर्ण था। वहां पर उन्होंने रामकृष्ण और विवेकानन्द को पढ़ा। वहां के संस्कारों को वे आत्मसात करते गए। आश्रम के विरजानन्द महाराज ने तुलेंद्र को मंत्र दीक्षा दी। तुलेंद्र सन्यास व्रत लेना चाहते थे, परन्तु स्वामीजी ने उन्हें बौद्धिक व मानसिक प्रतिभा को संसार में सिद्ध करने के लिए कहा। उन्हें अपनी महाविद्यालयीन शिक्षा को पूर्ण करने का आदेश

दिया।

बी. एस. सी. की परीक्षा, प्रथम श्रेणी में द्वितीय स्थान से उत्तीर्ण किया।

आई.ए.एस. की परीक्षा भी अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। परीक्षा के बाद ही वे रायपुर आ गए।

स्वर्ण पदक एवं आई. ए. एस. की दक्षता उन्हें बांध नहीं पा रही थी। उनके मन में वैराग्य की ज्वाला ऊंची उठ रही थी।

एक रात वे अपनी मां से तीन बार आज्ञा लेकर, घर से निकल गए। दो-तीन दिन तक वापस नहीं आये।

धनीरामजी को रायपुर में ही तुलेंद्र के द्वारा लिखा एक पत्र मिला, जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं-

''मानव जीवन का चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति ही है, यह तो आप स्वयं अनुभव किये हैं। आपका प्रयास भी उसी दिशा में प्रवाहित हो रहा है।''

''आपको सुनकर हर्ष होगा कि आपकी छाप मुझ पर पड़ गयी है। मैं भी अब समझ पा रहा हूँ कि भगवत प्राप्ति ही सर्वोच्च सिद्धि है और इस चेष्टा करने की, मैंने दृढ़ निश्चय होकर, कमर कस ली है। आशा है आपका तथा पूज्य माताजी का मंगलमय स्नेहपूरित शुभाशीर्वाद मुझे प्राप्त होगा पूज्य माताजी को प्रणाम तथा बच्चों को प्यार।

.....आपका तुलेंद्र''

इस पत्र को पढ़कर माता पिता दोनों नागपुर के धंतोली में बने रामकृष्ण आश्रम के लिए निकल पड़े। मठ में उनका अश्रुपूर्ण मिलन हुआ।

तुलेंद्र ने कहा- ''मैं रायपुर से पास था, इस कारण आप लोग मेरे पास आ गए, यदि मैं तप करने कहीं दूर चला जाता, तब तो आप लोग मुझे ढूंढ़ नहीं पाते''?

उनकी बातें सुनकर माता पिता आशीर्वाद देकर वापस आ गए।

तुलेंद्र आश्रम में ही रहने लगे। वे बड़े महाराज भास्करेश्वरानन्दजी के निर्देशानुसार आध्यात्मिक जीवन की तैयारी करने लगे। माता का धार्मिक संस्कार व पिता का अनुशासन उनके जीवन में सदा बना रहा।

स्वामी भास्करेश्वरानन्दजी के निर्देशन में ज्ञान पिपासा की शांति के लिए वे गीता, ब्रह्मसूत्र, उपनिषद जैसे और भी आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। वे स्वाध्याय एवं आध्यात्मिक साधना में डूब गए। ज्ञान, भक्ति और योग का अपूर्व समन्वय उनके जीवन में दिखाई देने लगा।

नागपुर से रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य का प्रकाशन हिंदी में होता था। प्रकाशन विभाग का काम तुलेंद्र देखा करते थे। उनकी हिंदी भाषा अच्छी होने के कारण वे प्रूफ देखा करते थे। उन्हें बचपन से ही संगीत में रुचि थी। वे दिन भर का काम निपटा कर शाम को आरती और भजन में भाग लिया करते थे।

भोजनालय में सब्जी भी काटते थे। पुस्तकों का पार्सल भी तैयार करते थे। प्रकाशित हो रही पुस्तकों का सम्पादन भी करते थे। इस प्रकार का काम मन लगाकर किया करते थे। 1951 से 1958 तक उनका साधना काल रहा, फलत: उनके व्यक्तित्व में निखार आया। नम्र व्यवहार, परम आत्मीयता, परसेवा और दूसरों के दुख को अपने में लेना इन गुणों के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले लोग स्थाई सम्बन्ध बना लिया करते थे।

सन् 1957 में तुलेंद्र ने रामकृष्ण संघ के महाध्यक्ष स्वामी शंकरानन्दजी से ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली। उनका नाम अब 'तेजचैतन्य' हो गया। वे 1957-58 तक घोर तपस्या करते रहे। वे ऋषिकेश आश्रम चले गए। कई महात्माओं से मिले, परन्तु तृप्ति नहीं मिली। घनघोर जंगलों में घूमते हुए वे 80 वर्षीय स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी से मिले। धीरे-धीरे वे भयमुक्त, संशयमुक्त होकर सामान्य मनस्थिति में पहुंचे। चिंतन मनन करते, भजन -कीर्तन करते जंगलों में घूमते रहे। इसी समय उन्हें परम सिद्धि की प्राप्ति हुई। वे रायपुर लौटने की तैयारी करने लगे। उनका एकमात्र लक्ष्य रायपुर में दो वर्ष व्यतीत किये स्वामी विवेकानन्द की स्मृति को अक्षुण्य बनाने का था । चिर स्थायी बनाने के लिए, उनकी भावधारा को प्रवहमान करना। यह पुनर्जागरण जैसा कार्य

था, जिसके लिए वे कृत संकल्पित थे।

रायपुर के बूढ़ापारा में सुप्रसिद्ध चित्रकार तथा बाल साहित्यकार पं गणेशराम मिश्र के घर का एक हिस्सा किराये पर लिया गया। यहां पर रामकृष्ण सेवा समिति का कार्यालय बन गया। यहां पर द्विवेदी परिवार के दो बेटे जो कि तेज चैतन्य के मित्र भी थे, अपनी सेवा देने लगे। सन् 1960 में उन्होंने बुद्धपूर्णिमा के दिन अमरकंटक के नर्मदा नदी के उद्गम स्थान पर संन्यास ग्रहण कर लिया। श्वेत वस्त्र से गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। तेज चैतन्य से स्वामी आत्मानन्द बन गए। वे रायपुर आ गए।

सन् 1961 की 30 जनवरी को शासन के द्वारा रायपुर में आश्रम निर्माण के लिए 93098 वर्गफुट जमीन दी गई। लोगों से पैसे एकत्र कये गए और आश्रम का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ।

12 अप्रैल 1962 को रामनवमी के दिन स्वामी आत्मानन्दजी ने आश्रम में अपने सहयोगियों के साथ प्रवेश किया। इस आश्रम का नाम ''विवेकानन्द आश्रम'' रखा गया। स्वामीजी के आह्वान पर आश्रम निर्माण के लिए दान मिलने लगा। विवेकानन्द जन्म शताब्दी वर्ष 1963-64 तक कई भवन बन गए। विद्यार्थी निवास गृह, विशाल विवेकानन्द विद्यालय, साधु निवास, प्रवचन हॉल, अस्पताल भवन, निः शुल्क छात्रावास, गौशाला और श्री रामकृष्ण का भव्य मंदिर।

स्वामी आत्मानन्दजी के दो छोटे भाई--देवेंद्र (गणित के व्यख्याता) एवं राजेन्द्र (इंजीनियरिंग की उच्च शिक्षा प्राप्त कर) आश्रम कार्य में लग गए। बाद में वे दोनों संन्यासी बन गए। वे क्रमशः स्वामी निखिलात्मानन्द एवं स्वामी त्यागात्मानन्द के नाम से जाने जाते रहे। सम्प्रति दोनों ब्रह्मलीन हो गए हैं। जगदलपुर से श्री संतोषकुमार झा भी आ गए। सन्यासी बनने के बाद वे स्वामी सत्यरूपानन्द कहलाने लगे। सम्प्रति वे रायपुर आश्रम के प्रभार में हैं।

स्वामी आत्मानन्दजी रायपुर विवेकानन्द आश्रम को बेलूड़ मठ से जोड़ने का प्रयास करने लगे। यह प्रयास सफल हुआ।

1967 में वे रींवा गए । रींवा में 4 दिन रहे । चार व्याख्यान हुए । रींवा शहर विवेकानन्द भावधारा में डूब गया । एक अनुकूल वातावरण बना । भविष्य में रामकृष्ण आश्रम की नींव तैयार हुई । इसका श्रेय स्वामी आत्मानन्द जी को ही जाता है ।

7 अप्रैल 1968, रामनवमी के दिन, विवेकानन्द आश्रम का विलय बेलूड़ मठ में हो गया। उसी वर्ष में शारदा की जन्म तिथि पर, परमाध्यक्ष वीरेश्वरानन्दजी ने स्वामी आत्मानन्दजी को विधिवत संन्यास प्रदान किया।

आत्मानन्दजी विवेकानन्दजी के व्यावहारिक वेदांत को मानते थे। मनुष्य ईश्वर का ही रूप है। यानी मनुष्य की सेवा ही साक्षात ईश्वर की सेवा है। मनुष्य के लिए जो कुछ भी किया जाता है, वह ईश्वर को ही समर्पित हो जाता है।

इसी विश्वास के साथ आत्मानन्दजी ने अपना जीवन पीड़ित मानव की सेवा में लगा दिया था।

सन् 1974 में छत्तीसगढ़ में भारी अकाल पड़ा। पूरा छत्तीसगढ़ सूखे की चपेट में आ गया। उस समय रामकृष्ण परमहंस के मन्दिर का निर्माण आरम्भ हो चुका था। उसके लिए मदद के रूप में पैसे आने लगे थे। अब तक मन में मंथन चल रहा था। मंथन के बाद एक दिशा मिली। 2, अक्टूबर 1974 को साथियों के साथ एक नई दिशा में चल पड़े। अब तक मन्दिर के लिए एकत्र की गई धन राशि अकाल पीड़ितों पर खर्च कर दी गयी। अब मन्दिर के लिए पैसे जुटाने में लग गए। उनके आह्वान से बहुत लोगों ने उनकी मदद की। पूरे मध्यप्रदेश का भ्रमण किया। 1976 में ग्वालियर का रामकृष्ण आश्रम बना। ग्वालियर आश्रम के लिए आई राशि को, आश्रमाध्यक्ष ने आत्मानन्दजी को रायपुर आश्रम के लिए के लिए देना चाहा, परन्तु स्वामीजी ने लेने से मना कर दिया।

2 फरवरी 1976 को परमाध्यक्ष वीरेश्वरानन्दजी ने मन्दिर का शिलान्यास रखा। स्वामी आत्मानन्दजी बहुत प्रसन्न थे। रायपुर का यह आश्रम मध्यप्रदेश में भाव आंदोलन का आश्रय बना। रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा ने सामाजिक रीति रिवाजों को लांघकर जीवन के नैतिक मूल्यों की ओर लोगों

का ध्यान खींचा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई एवं अन्य मतों को मानने वालों को श्रीरामकृष्ण के उपदेशों से प्राचीन एवं पाश्चात्य विचारों का मिलन सेतु मिला। सभी आश्रमों के साथ-साथ रायपुर में भी, सभी धर्म के अनुयायियों ने मंच पर अपने विचार रखें। वह सर्व धर्म सम्मेलन था।

यह विवेकानन्द भावधारा का प्रवर्तन था--छत्तीसगढ़ की धरती पर।

आत्मानन्दजी ने अनुसूचित जाति आदिवासी एवं वनवासी जातियों के उत्थान के लिए एवं उनकी बालिकाओं को शिक्षा देने के लिए, बहुत काम किया। अबूझमाड़ के वनवासियों के जीवन को देखने के बाद, वे उनके लिए कुछ करने की सोचने लगे।

एक तालाब का पानी कुत्ता और इंसान साथ-साथ पीते हैं। परन्तु वे सब वनवासी केवल पेज ही पीते थे। इसे उगाने के लिए खेती का उन्नत तरीका नहीं था। पेज न हो, तो मांस खाया करते थे। वहां पाए जाने वाले मेवा एवम चिरौंजी, पानी के मोल, दलाल खरीदा करते थे।

वे सब बांस शिल्प कला के महारथ है, परन्तु उसका बाजार नहीं है। इन सब चीजों के बदले माड़िया जाति के लोग नमक और अपनी जरूरत की चीजें खरीदा करते थे। स्वामीजी ने इनके जीवन को देखा और मन में सोच लिया कि ''यहीं इनके शिव हैं''। ''इन्हीं की सेवा करनी है मुझे।''

आत्मानन्दजी मध्यप्रदेश शासन से अपने बनाये ''अबूझमाड़ प्रकल्प'' के लिए अनुदान मांगने, अधिकारियों से मिले, तो वहां के एक अधिकारी ने कहा कि आदिवासियों के बीच जाकर काम करना हो, तो छोटी नहीं, एक बड़ी योजना होनी चाहिए। शासन ने दो करोड़ रुपये की पन्द्रहवर्षीय योजना का अनुमोदन किया। इसे बेलूड़ मठ ने भी स्वीकृति दे दी। शासन ने इस कार्य के लिए 12 एकड़ जमीन भी दी।

3 अगस्त 1985 के दिन नारायणपुर में विराट वनवासी सेवाकेंद्र का प्रारंभ किया किया गया। आत्मानन्दजी के छोटे भाई निखिलात्मानन्दजी इस केंद्र का संचालन करते रहे। अबूझमाड़ की जंगल एवं पहाड़ों से घिरे भाग में 10 स्वास्थ्य सेवा केंद्र और सस्ती दुकानें, शाला और नि:शुल्क छात्रावास

खोल दिया गया। पेयजल की समस्या को देखते हुए लोकयांत्रिकी विभाग के सहयोग से कई गांवों में हैंडपम्प लगाने का निर्णय लिया गया। जंगलों के अंदर कर्मचारी जाना नहीं चाहते थे। बहुत ही कठिनाईयों के साथ खुदाई की गई। आदिवासियों के खान-पान (मांसाहारी से शाकाहारी) को बदलने में, खेती करने के ढंग को समझने में, सेवादल के सदस्यों को बहुत कष्ट झेलने पड़े।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंर्तगत वनवासी छात्रों के लिए आवासीय विद्यालय की स्थापना हुई। यहां पर सामान्य शिक्षा दी जाती हैं। कुछ समय में ही छात्रों की संख्या 400 से ऊपर हो गयी। छात्रों की जीवनधारा बदल गयीं। कई छात्र उच्च शिक्षा तकनीकी शिक्षा की पात्रता रखते थे । वहाँ से पढ़कर निकले कई छात्र इंजीनियर व डॉक्टर बन चुके हैं ।

कई उच्च पद तक पहुंच चुके हैं। स्त्री शिक्षा के लिए 1985 में ही नारायणपुर में ''विश्वास'' नामक संस्था, आश्रम और कुछ महिला सहयोगियों की सहायता से चल रही है। ''यूनिसेफ'' एवं आर्थिक अनुदान से छात्रावास बना है। यहां पर सभी सुविधाओं के साथ बालिकाएं रह रही हैं। आरम्भ में ही 100 बालिकाएं थीं। बालिकाओं के संस्कृत उच्चारण बहुत ही शुद्ध है। पूजा, अर्चना, भजन, कीर्तन के साथ-साथ, खेलकूद में भी, वे अपनी योग्यता दिखा रही हैं।

साधारण शिक्षा कृषिकार्य प्रशिक्षण को वास्तविक जीवन से जोड़ना जरूरी था। इसके लिए विवेकानन्द वनवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र ने काम किया। घने जंगल के बीच, पांच शिक्षण संस्था की स्थापना हुई। छात्रावास में 50 शैय्या वाला बड़ा अस्पताल बना, वनवासी प्रशिक्षण केंद्र उद्योग कुटीर, उचित मूल्य की सस्ती दुकान चला रहे हैं।

नारायणपुर रामकृष्ण आश्रम, प्रयाग के प्राचीन भारद्वाज ऋषि के आश्रम के समान, भारतवर्ष में एक आदर्श शिक्षा संस्था के रूप में संचालित किया जा रहा है। इससे वनवासियों का भाग्य जग गया है। बाद में स्वामी आत्मानन्दजी के छोटे भाई डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और उनके अनुयायियों ने उनके ही कदमों पर चलते हुए बालकों के विद्यादान के लिए विवेकानन्द

विद्यापीठ की स्थापना की। यह रायपुर शहर के कोटा क्षेत्र में है। यह संस्था लगातार प्रगति कर रही है।

''अबूझमाड़ प्रकल्प'' के लिए, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत शासकीय अनुदान लेना था। उसी की तैयारी चल रही थी। स्वामीजी अपने मित्र सुविमल चटर्जी के साथ इंदौर भोपाल, अनुदान हेतु आवेदन पत्र देने के लिए गए थे। दोनों मित्र ट्रेन से नागपुर के रास्ते रायपुर आनेवाले थे, परन्तु अचानक जीप से आने लगे। इस जीप को इंदौर में बनाने के लिए दिए थे। उन्होंने कहा जीप का निरीक्षण भी हो जाएगा। राजनांदगांव से 13 किलोमीटर पहले कोहका ग्राम में जीप पलट गई। स्वामीजी गिरे, ड्राईव कर रहे बलराम दूसरी खाई में गिरे। उसके बाद जीप 2-3 बार पलट गई। जीप स्वामीजी के वक्षस्थल से टकराकर रुक गयी। उनकी सांसें रुक गई, परन्तु ऐसा लग रहा था जैसे वे चिरनिद्रा में हैं। पूरे शहर में घटना तेजी से फैल गई। अंतिम संस्कार रायपुर के खारून नदी के किनारे किया गया। वहां पर मठ बना हुआ है। वह दिन था---दिनांक 27 अगस्त 1989।

भोपाल जाने के पहले अपना काम पूरा कर चुके थे। वे कहा करते थे कि ''मैं 60 साल पूरे नहीं कर पाऊंगा'' -- यह सच भी हो गया।

छत्तीसगढ़ में आध्यात्मिक आंदोलन के प्रवर्तक, नैतिक उत्थान के पथप्रदर्शक, सांस्कृतिक वातावरण के जनक, विवेकानन्द भावधारा के अग्रदूत---स्वामी आत्मानन्दजी ब्रह्मलीन होकर भी हमारे साथ हैं। वे मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़ के मानव समुदाय के शीश के मुकुट हैं।

ooo

दो

आत्मानन्द जी के व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम

स्वामी आत्मानन्दजी के व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम थे। चरम वैराग्य के साथ-साथ ''कुशल प्रशासक'' के भी गुण थे उनमें।

उन्होंने जो भी योजना बनाई उससे दूरगामी लाभ और प्रयोजन को ध्यान में रखा गया। ''अबूझमाड़ प्रकल्प'' - इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। उनके कुशल निर्देशन में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान में ''श्री रामकृष्ण विवेकानन्द'' नाम से कई आश्रम चल रहे हैं।

स्वामी आत्मानन्दजी ''सन्त'', ''साधक'' के साथ उच्चशिक्षित विद्वान थे। ''विज्ञान'' के विद्यार्थी रह चुके स्वामीजी की मानसिकता भी वैज्ञानिक थी। वे अलौकिक तत्व की घटनाओं को अधिक मान्यता नहीं देते थे। जीवन में ऐसी कई घटनाएं घटी, जिसके कारण इस तत्व को पूरी तरह अस्वीकार भी नहीं करते थे।

एक रोचक बात यह कि वे 'राशिफल' पढ़ने में रुचि रखते थे परन्तु सोच समझकर काम करते थे। राशिफल को 'चैलेंज' के रूप में स्वीकारते थे ।

स्वामी जी 'संकल्पवान' व्यक्ति थे। जिस काम का संकल्प लिया उसे पूरा जरूर करते थे। एक बार की बात है, उन्हें बिलासपुर से अमरकंटक जाना था। वहां के रेलवे इंस्टिट्यूट सभागृह में शाम छः बजे प्रवचन था। जीप से निकले, जीप रोड के पास बिगड़ गई। सुधरवाने में समय लगता। सड़क पर खड़े-खड़े सोच रहे थे कि ''कैसे जाएं?''

उसी समय एक व्यक्ति मोटरसाइकिल से आते दिखा। स्वामीजी ने उसे रोका। उस व्यक्ति ने कहा ''मैं स्वामी आत्मानन्दजी का प्रवचन सुनने

जा रहा हूँ, मुझे देर हो जाएगी।''

स्वामीजी ने कहा- ''मुझे भी वहीं जाना है इस कारण देर नहीं होगी।'' वह मान गया। दोनों साथ-साथ चले। सभागृह पहुंचने पर स्वामीजी ने मोटर साइकिल चालक को धन्यवाद दिया। वहां पर अगवानी करने वाले लोग बैठे थे, वे स्वामीजी को अंदर ले जाने लगे। मोटसाइकिल वाला अचंभित था। स्वामीजी मुस्कुरा रहे थे। यह 'सन्त' की 'सादगी', 'सरलता' व 'निरभिमानी' प्रकृति की निशानी है। मोटरसाइकिल अपने को भाग्यवान समझा रहा था। स्वामी जी तो सामान्य ही रहे। यही उनके व्यक्तित्व की विशेषता है।

स्वामी जी में 'खिलाड़ी भावना' कूट-कूट कर भरी हुई थी। रायपुर के विवेकानन्द आश्रम में टेबल टेनिस एवं बॉलीबाल बहुत खेला करते थे। बाहर सड़क पर आने-जाने वाले भी, उन्हें बॉलीबॉल खेलते हुए देखकर आनन्द लेते थे। बहुतों को आश्चर्य होता था। वे टिप्पणी भी करते थे कि ''संन्यासी होकर खेलते हैं, उनको तो केवल भजन कीर्तन करना चाहिए?'' निश्चित रूप से ऐसी टिप्पणी स्वाभाविक थी। यह खिलाड़ी भावना स्वामी विवेकानन्द की देन थी। वैसे भी बचपन से ही शारीरिक श्रम व खेलकूद के प्रति रुचि रही। ''शरीर व स्वास्थ्य ठीक रहने पर ही, मन भी स्वस्थ रहता है''-इस मत के पक्षधर थे।

ooo

तीन

स्वामी जी का रींवा प्रवास

खेल का यह जुनून सदा रहता था। 1967 में वे रीवा गए। डॉ गुप्ता वहीं मेडिकल कालेज में पदस्थ थे। उनकी पत्नी उषा विवेकानन्द भावधारा से जुड़ी थी। स्वामीजी की परिचित थी। मेरे पति प्रो. मनहर आडिल भी रींवा कृषि महाविद्यालय में व्यख्याता थे। तब मेरा पी एच.डी. का शोधकार्य चल रहा था-- सन्त धर्मदास व कबीरपंथ पर। गिरीश द्विवेदी (जो संन्यास के बाद स्वामी करानन्द हो गए।) भी उस समय इंजीनियरिंग कालेज में व्याख्याता थे। बहुत रोचक घटना घटी। हम छोटे-छोटे दो कमरों के मकान में रहते थे। मकान ऐसा कि तीसरा व्यक्ति कहां सोए? तो, जब स्वामीजी का पत्र (पोस्टकार्ड) आया कि ''सत्या मैं रींवा आ रहा हूँ दो तीन दिन रहूंगा, तुम्हें व मनहर को आशीष!

तुम्हारा भैया''

मेरी खुशी का ठिकाना नहीं। प्रश्न भैया के सोने व रहने के इंतजाम का था। भैया ने उषा गुप्ता को भी आने की सूचना दी। उषा दीदी ने तुरंत हमसे संपर्क किया। वह हमारा पहला परिचय था। दीदी ने घर देखकर कहा, ''सत्या मेरा घर बड़ा है, अलग कमरा भी है, भैया को वहीं रुकाएंगे।

तुम लोग सुबह से आ जाना--बेटे को लेकर।''

तब मेरा बेटा कुछ माह का था। हम तैयार हो गए। गिरीश भाई को भी पत्र लिखा था भैया ने। इस तरह उनके तीन आत्मीय लोगों ने बस स्टॉप पर स्वागत किया भैया का।

हम तीनों आत्मीयजनों को देखकर स्वामीजी के आनन्द की सीमा नहीं थी।

1967 का रींवा शहर किसी कस्बे की तरह था। हालांकि रींवा बघेलखण्ड का प्रमुख शहर था। वहां महिला महाविद्यालय, कृषि महाविद्यालय,

कला एवं विज्ञान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेडिकल कालेज--सभी कुछ तो था, परन्तु फिर भी, ग्रामीण संस्कृति शहरी संस्कृति पर हावी थी। शिक्षा केन्द्र होते हुए भी, जागृति नहीं थी। पुरानी, सामाजिक रूढ़िवादिता बरकरार थी, जिसके कारण उसे पिछड़ा इलाका कहा जाता था।

तो स्वामीजी आ गए रींवा। हम पुराने बस स्टैंड के पास, बांसघाट, घोघर इलाके ने रहते थे। वकील अच्छेलालसिंह के मकान के पहली मंजिल में दो छोटे-छोटे कमरे हमें मिले थे। शाम होते ही शहर में घुप्प अंधेरा छा जाता था।

उषा दीदी के घर पर भैया के रुकने की व्यवस्था की गई। सुबह हम अपने शिशु को लेकर दीदी के घर पहुंच गए। शिशु को हम ''बिंदु'' पुकारते थे। वह तो स्वामीजी के लिए मानों एक खिलौना हो गया। वे उसे गोद में लेकर घूमते और मैं और उषा दीदी खाना बनाते। मेरे आने से पूर्व ही भैया का स्नान, ध्यान, पूजन समाप्त हो गया था।

स्वामीजी के आने के पूर्व ही हमने उनके 4 व्याख्यान निश्चित कर दिए थे--साधिकार!

एक विज्ञान महाविद्यालय में, दूसरा कृषि महाविद्यालय में, तीसरा शासकीय महिला महाविद्यालय में, 4था शहर के मध्य टाउन हॉल में।

जब स्वामीजी को पता चला तो पहले तो सिर पकड़कर बैठ गए, फिर हंसते हुए मेरे पति से बोले बोले-

''मनहर तू मेरा शोषण कर रहा है''।

फिर वे ठठाकर हंसने लगे। हम सब भी हंसने लगे। फिर तय हुआ कि कल दो व्याख्यान, व परसों दो व्याख्यान आयोजित होंगे व प्रतिदिन रात-का भोजन मेरे घर होगा। आज यह तय हुआ कि वे खूब टेनिस खेलेंगे।

टेनिस कहां खेलेंगे?

गिरीश भाई उन्हें शाम को अपने कॉलेज ले गए। वे इंजीनियरिंग कालेज में व्याख्याता व स्पोर्ट्स प्रभारी थे, अत: स्टोर की चाबी उनके पास ही रहती थी। मैं अपने घर में उनके व गिरीश भाई के भोजन की तैयारी करने लगी। वे दोनों करीब रात्रि 9 बजे मेरे घर पहुंचे। एकदम पसीने से लथपथ। खेलने का जुनून ऐसा कि 3 घण्टे खेलने के बावजूद भी थकान

नहीं। मैं देखकर चकित रह गयी।

उस समय मेरे पास स्टोव ही था खाना बनाने के लिए। सेम व मेथी भाजी की सब्जी बन रही थी। बेटा रोने लगा। वे बाथरूम में मुश्किल से घुस पाए। आवाज लगाए– ''मनहर खींचना रे मैं फंस गया हूँ।'' ये दौड़ कर गए, अंदर ले गए, फिर बाहर भी निकाले।

भैया ने राहत की सांस ली! बोले– ''3 घण्टे खेला, पर ऐसा नहीं हांफा, जैसा तुम्हर बाथरूम में घुसने व निकलने में हांफ रहा हूँ।

''अब मैं समझ गया सत्या कि तुम अपने घर रहने क्यों नहीं बोली।''

उनकी बातों से हमने बहुत आनन्द लिया। वे हल्के फुल्के परिहास करने में निपुण थे। हर परिस्थिति में परिहास करने से नहीं चूकते थे ।

वे अपने लंबे–चौड़े डील डौल वाले शरीर का स्वयं ही बखान किया करते थे, और हंसते–हंसाते थे। बहुत बड़ी महानता थी उनमें! यह गुण सामान्य व्यक्ति में दुर्लभ होता है।

मुंह हाथ धोकर खाने बैठे, तो वे पूड़ी सेकने लगे। मैं बेलती गयी, वे सेंकते गए। सेम व मेथी भाजी की सब्जी थी। 20 पूड़ी सेंककर वे आचमन कर विधिवत भोजन करने लगे। बस सब्जी की तारीफ करते रहे। बोले– ''कल रात गोभी बनाना।'' फिर इनको बोले..''मनहर तुम सुबह ही सब्जी ला देना। क्योंकि दिन में दो व्याख्यान रखा है तुमने, तो तुम तो मेरे साथ दिन भर बाहर रहोगे। सत्या बच्चे के साथ अकेली रहेगी, तो खाना बनाने में समय लगेगा।'' वे गृहस्थ की परेशानी को समझते थे। रात 11 बज गए। वे गिरीश भाई के साथ उषा दीदी के घर सोने चले गए। गिरीश भाई भी एकदम हंसमुख व शांत स्वभाव के थे। ऐसा लग रहा था मानों हम बरसों के परिचित हैं। बहुत सरल स्वभाव।

व्याख्यान के लिए विषयों का चुनाव हो गया। तीन विषय उन्होंने तय किये। सार्वजनिक टाउनहॉल के लिए विषय हमने तय किया–''धर्म और विज्ञान।''

''आत्मोन्नति का मार्ग व जीने की कला'', ''जीवन का लक्ष्य और स्वधर्म''–इन दो विषयों पर विज्ञान महाविद्यालय व कृषि महाविद्यालय में व्याख्यान हुआ। इन दोनों जगहों पर स्वामी जी का परिचय मेरे पति प्रो. मनहर आड़िल ने दिया ।

''नारी जीवन की सार्थकता और जीवन मूल्य'' - इस विषय पर महिला महाविद्यालय में व्याख्यान हुआ। यहाँ स्वामी जी का परिचय प्राचार्या डॉ. रमोला चौधरी ने दिया।

टाउनहॉल में स्वामी जी का परिचय मैंने दिया ।

जब टाउनहॉल में व्याख्यान समाप्त हुआ तो रीवा के कमिश्नर पिशरोडी जी स्वामी जी के पास आये, अपना परिचय दिया और चरणों में झुककर प्रणाम किये। सभी लोग आक्षर्य से देख रहे थे।

दूसरे दिन वे स्वामीजी से मिलने घर आये, बहुत देर तक चर्चा करते रहे। वे विवेकानन्द भावधारा के अनुगत हो, विनम्र बने रहे। हमारे लिए आनन्दमय दिन था।

महिला महाविद्यालय की प्राचार्या मैडम चौधरी व उनके पति डॉ. चौधरी भी मिलने आये। यह 4था दिन था स्वामीजी का। 5वें दिन उन्हें बस में बैठाने गिरीश भाई व मेरे पति बस स्टैंड गए। मेरे आंसू थम नहीं रहे थे। वे हंसते-हंसते पीठ पर धौल जमाते बोले...''पगली कहीं की। आखिर मैं रायपुर ही तो जा रहा हूँ न?'' और भैया चले गए।

हम प्रति रविवार को रामकृष्ण मिशन की प्रार्थना सभा अलग-अलग घरों में नियमित रूप से आयोजित करने लगे। मेरे घर, उषा दीदी के घर, मैडम चौधरी के घर, गिरीशभाई के घर, जगदीश प्रसादसिंह के घर। इस तरह एक वातावरण तैयार हो रहा था--विवेकानन्द भावधारा- के प्रसार के लिए । कुछ माह बाद ही हमारा स्थानांतरण सीहोर (भोपाल) हो गया और हम चले गए। रींवा का हमारा भावमय समूह छूट गया।

गिरीश भाई से बाद में जब रायपुर आश्रम में मुलाकात हुई तब वे ब्रह्मचारी बन चुके थे। उन्हीं के साथ मैने ब्रह्मचारी के रूप में संतोष भैया (स्वामी सत्यरूपानन्दजी) को भी देखकर चकित हो गयी। संतोष भेया जगदलपुर में मेरे पिताजी के विद्यार्थी थे व मुझे बचपन से जानते थे। इस तरह रायपुर आश्रम मेरे लिए परिवार की तरह ही था।

उन सबका बॉलीबाल खेलना, टेनिस खेलना, सभी युवाओं के लिए स्फूर्तिदायक व प्रेरणास्पद होता था। रास्ता चलते लोग सड़क से देखने लगते थे।

ooo

चार

रींवा में व्याख्यान-पहला

''आत्मोन्नति का मार्ग व जीवन जीने की कला''

''उपस्थित प्राचार्य, प्राध्यापकगण एवं विद्यार्थियों, आज मैं आपके समक्ष आत्मोन्नति का मार्ग एवं जीवन जीने की कला ''- इस विषय पर बात करना चाहता हूँ । जन्म के बाद से ही मनुष्य का संघर्ष शुरू हो जाता है। आत्मा के उत्थान की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। आत्मा के उत्थान के तीन मार्ग होते हैं। मनुष्य किसी एक मार्ग की ओर बढ़ता है। एक सीढ़ी पारकर, दूसरी सीढ़ी, फिर दूसरी सीढ़ी को पारकर तीसरी सीढ़ी की ओर बढ़ता है, तब आत्मा का पूर्ण उत्थान या विकास होता है। ये सीढ़ियां कैसी हैं? पहली सीढ़ी से मनुष्य प्रकृति से लड़ता है। वह भौतिक विज्ञान की ओर उन्मुख होता है। दूसरी सीढ़ी में मनुष्य व मनुष्य के बीच लड़ाई होती है। इसका सम्बन्ध समाजविज्ञान से होता है। तीसरी लड़ाई अपने आप से यानी आत्मसंघर्ष होता है। यह मनोविज्ञान का विषय बनकर, आत्मोन्नति का मार्ग बन जाता है। परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपने मन के भीतर परिवर्तन लाना पड़ता है। आप युवा है, विद्या अर्जन कर रहे हैं। यही वह समय व अवस्था है जब आप भौतिक जगत के संघर्ष में जीतकर आत्मोन्नति के मार्ग में बढ़ सकते हैं। इसके लिए मनुष्यत्व के सोपानों को पार करना होगा। आत्मोन्नति के मार्ग में सहायक तत्व क्या है। हम जानें और बाधक तत्व क्या है? यह भी जाने।

आप विद्यार्थी है। अनुशासन, समय की पाबंदी, स्वाध्याय, निरन्तर अभ्यास, आत्मविश्वास, परोपकार, दया, निर्भयता, सत्य की साथ सेवाभाव- ये आपके विकास के सहायक तत्व है। ये चरित्र विकास के अमूल्य तत्व है। चरित्र ही मनुष्य जीवन की रीढ़ है, जिस पर आत्मोन्नति का चरम उत्कर्ष टिका है।

आत्मोन्नति के बाधक तत्व हैं- भय, ईर्ष्या, क्रोध, शंका, बुराई करना, दूसरों का दोष निकालना, असहनशीलता, अत्यधिक चिंता, बरगलाना, वाणी पर अनियंत्रण, आलस्य।

ये सब मनुष्य की आत्मा के उत्थान या आत्मविकास में बाधक हैं। आपके लिए अभी स्वाध्याय व निरन्तर अभ्यास बहुत आवश्यक है।

विज्ञान की ओर अग्रसर होकर आप धर्म की ओर ही जाएंगे। यह धर्म आपको जीने की कला की ओर उन्मुख करेगा। हम जीने की कला नहीं जानते, इसीलिए दुखी रहते हैं। आप नियम के पक्के है, ठीक है, पर आप खीझें नहीं, गुस्सा न करे, दूसरी बात, अकस्मात् प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहें। तीसरी बात दूसरों का दोष देखना, बार-बार याद दिलाना बन्द करे। यदि आपमें इन गुणों का विकास होता है तो आप जीवन जीने की कला जान जाएंगे। तब आत्मोन्नति के मार्ग में आगे बढ़कर आप सच्चा जीवन जी सकेगे। यह विज्ञान व कला का अध्ययन सार्थक हो जाएगा। आप विज्ञान के विद्यार्थी हैं। हमें अपने भीतरगुण दर्शन की प्रवृति पैदा करनी चाहिए। इसके लिए अभ्यास की जरूरत होती है। हर मनुष्य में गुण व दोष होते है। पर हमारी प्रवृत्ति दोष दर्शन की अधिक होती है। यह आत्मोन्नति में बाधक तत्व है। विज्ञान का अध्ययन हमारे आचरण को शुद्ध करता है, क्योंकि विज्ञान में विश्लेषण का बीज होता है। विज्ञान हमारे अहंकार को नष्ट कर सत्यान्वेषण करता है। यही सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति मनुष्य के आचरण को शुद्ध करती है। जब मनुष्य अभिमानरहित हो जाता है, तो आत्मा शुद्ध व पुष्ट होती है, इसलिए विज्ञान हमें धर्म के मार्ग पर ले जाता है। जब विज्ञान के विद्यार्थी होने के नाते आपको यह नहीं सोचना चाहिए कि विज्ञान से धर्म अलग है। नही, विज्ञान हमें आत्मोन्नति के मार्ग पर ले जाने में सहायक है व जीवन जीने की कला सिखाने में सहायक है।

आप स्वाध्यायी बने, कर्मठ बने, परहितकारी बने, स्वामी विवेकानन्द हमें दूसरों के लिए जीने की प्रेरणा देते है। वे कहते हैं कि ईश्वर मंदिर की मूर्ति में नहीं, वरन संसार के पीडित लोगों व दुखी लोगों में निवास करते है। अतः हमें पर-पीड़ा को दूर करने के लिए जीवन जीना चाहिए, इसलिए आप विज्ञान का अध्ययन करते हुए स्वयं अपनी आत्मा का विकास व शोधन करते हुए, उच्च चरित्र का निर्माण करें।

(यह व्याख्यान रींवा के टी आर एस कॉलेज में दिया गया था। यह आख्यान का सार है। यहा स्वामी जी का परिचय मेरे पति मनहर जी ने दिया था।)

पाँच

रींवा में व्याख्यान-दूसरा
''जीवन का लक्ष्य और स्वधर्म''

आज मैं आपके समक्ष ''स्वधर्म'' व ''परधर्म'' के सम्बंध में कुछ बातें स्पष्ट करना चाहता है। आप कृषि महाविद्यालय में अध्यापन भी कर रहे हैं। इस अध्ययन व अध्यापन के क्षेत्र में आप समाज के विभिन्न वर्गों से आये हैं। कोई डॉक्टर, कोई पुजारी, कोई अध्यापक, कोई कृषक, कोई मजदूर पिता की संतान है। पर जन्म के अनुसार-स्वभाव व रुचि नहीं है। स्वरुचि ही स्वधर्म है। पुजारी का बेटा व्यापार कर सकता है। डॉक्टर का बेटा वकालत कर सकता है। इंजीनियर का बेटा चिकित्सा कर सकता है।

अध्यापक का बेटा प्रशासक व राजनीतिज्ञ हो सकता है। यह स्वरूचि ही उसका स्वधर्म है। इसी स्वधर्म का ईमानदारी से पालन करना चाहिए।

स्वधर्म कर्म है। इसी स्वधर्म कर्म का पालन करते हुए मनुष्य को मृत्यु का वरण करना चाहिए।

''स्वधर्मो निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।''

परन्तु इस ''स्वधर्म में लोकसंग्रह की वृत्ति'' होनी चाहिए। मनुष्य अपने स्वधर्म यानी कर्म को लोकसंग्रहार्थ कैसे बनाये, इसका उपाय जानना आवश्यक है।

भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसी स्वधर्म के बारे में बतलाया था।

''सभी कर्मों को मुझमें समर्पित करते हुए, चित्त को आत्मा में केंद्रित कर, आशा रहित, ममतारहित, और सन्तापरहित हो युद्ध कर।''

उन्होंने यह भी कहा कि विद्वान को स्वयं कर्म में लगे रहकर, अज्ञानियों को भी कर्म में लगाना चाहिए। दोनों में अंतर यह तत्ववेत्ता होने के कारण स्वयं को कर्म का कर्ता नहीं मानता, जबकि अज्ञानी व्यक्ति

अहंकार से ग्रस्त होकर अपने को कर्ता मानता है। भगवान ने अर्जुन से कहा– ''लोकसंग्रहार्थ कर्म करना चाहिए।''

पर यहां यह समझना आवश्यक है कि लोकसंग्रह का कर्म किस प्रकार किया जाता है।

अर्जुन क्षत्रिय है। अर्जुन के लिए युद्ध ही सहज कर्म है, वही उसका स्वधर्म है। यदि कोई व्यक्ति शिक्षक है तो उसका स्तर स्वधर्म अध्ययन अध्यापन है। व्यापारी का सहज कर्म या स्वधर्म व्यापार है। श्रमिक का सहजकर्म या स्वधर्म शारीरिक श्रम है। कृषक का सहज कर्म कृषि उत्पादन का कार्य है। वैद्य का सहज कर्म या स्वधर्म रोगी का रोग दूर करने औषधि उपलब्ध कराना है। हर प्रकार का कर्म करने वाला लोकसंग्रह हेतु कर्म कर सकता है। अपने–अपने कर्म से न डिगते हुए मनुष्य उसे लोकसंग्रहार्थ कैसे बनाये, यह उपाय भी गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने बताए हैं।

लोकसंग्रहार्थ कर्म के 5 उपाय हैं–

पहला यह– कि कर्ता अपने समस्त कर्मों का ईश्वर में संन्यास करे अर्थात वह कर्मों का कर्तापन और उनसे प्राप्त होने वाले फलों का भोक्तापन ईश्वर को समर्पित करे। वह सोचे कि कर्म की प्रेरणा और शक्ति प्रभु की ही दी हुई है। कर्म का जो फल प्राप्त होगा उसे वह मन ही मन प्रभु को सौंपे और फल को प्रसाद के रूप में ग्रहण करे।

दूसरा उपाय– कर्म करते हुए अपने चित्त को आत्मा में केंद्रित करे। सामान्यत: हमारा चित्त या तो देह में केंद्रित होता है अथवा मन में। यह दूसरा उपाय पहले उपाय को पुष्ट करता है। यदि हमारी आसक्ति देह पर बहुत बनी रही, तो हम अपने कर्मों की प्रेरणा के संदर्भ में ईश्वर का सही सही चिंतन नहीं कर पाएंगे। मुंह से हम भले ही बोलते रहें, कि प्रभो यह कर्म तुम्हें समर्पित करता हूँ, पर वह मात्र बोल ही रहेगा, उसके अर्थ की प्रतीति अंत:करण में नहीं होगी। जैसे हम अपने पुत्र को लेकर किसी महामना साधु के पास जाते हैं और बेटे का परिचय देते हुए उनसे कहते हैं. यह आपका बेटा है। हम भले ही मुख से अपने बेटे के लिए ''आपका बेटा'' कहते हैं, पर शत–प्रतिशत हमारे मन में यही भाव बना रहता है कि बेटा मेरा है–। ठीक यही बात अपने कर्मो को भगवान के प्रति समर्पित करने के संदर्भ में लागू

होती है। यह बात मात्र शाब्दिक होती है, उसके पीछे अनुभूति की तनिक भी मात्रा नहीं होती।

जब हमारा चित्त मन पर आसक्त हो जाता है, तब हमारा ममत्व संसार के पदार्थों और व्यक्तियों में घूमने लगता है, वह ईश्वर को अपना केंद्र या आधार नहीं बनाता। इसीलिए जब तक हम अपने चित्त को देह और मन से हटाकर आत्मा में केंद्रित करने की चेष्टा नहीं करेंगे, तब तक ईश्वर के प्रति, हमारा कर्म-समर्पण भी पुष्ट नहीं होगा।

तीसरा उपाय है- आशा-निराशा, दोनों से रहित होना। हमारा चित्त आशा के कारण ही मन से चिपकता है। भविष्य का ताना बाना बुनना मानों आशा की डोर से बंधना है। भविष्य का अधिक विचार ईश्वर के प्रति हमारे समर्पण को शिथिल करता है। लोकसंग्रह हेतु कर्म करनेवाले व्यक्ति को भविष्य के सम्बंध में चिंता करने वाली आशा से बचना चाहिए। वह यह उपदेश नहीं देते कि व्यक्ति निराशा या हतोत्साहित हो जाय। निराशा व आशा में एक अंतर है। आशा में देह और मन दोनों की क्रियाशीलता बाधित होती है। निराशा में मन तो क्रियाशील रहता है, पर देह निष्क्रिय हो जाता है। अतः कर्म करते हुए आशा व निराशा-दोनों से बचना चाहिए।

चौथा उपाय है- ममत्वरहित होना। सारे ममत्व की जड़ है देह। देह सम्बन्ध ही हमारे भीतर ममता उपजाते हैं और चित्त को देह में अटकाकर रखते हैं। जैसे आशा हमें भविष्य से उलझाकर रखती है, वैसे ही ममता भूतकाल से। हम अपने देह सम्बन्धों के प्रति ममत्व के कारण अपने कर्तव्य कर्म ठीक से नहीं कर पाते और आत्मतत्व से दूर चले जाते हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से ममतारहित होने का उपदेश करते हैं। ममत्व हमारी दृष्टि में पक्षपात पैदा कर देता है। इसीलिए सारा चित्त देह की सीमा में अटक जाता है।

पांचवा उपाय है- संताप, घबड़ाहट, आवेश से रहित होना। कर्म करते समय यदि हमारी बुद्धि में घबड़ाहट, आवेश, संताप हो तो हमारा कर्म बढ़िया नहीं हो पाता। ये सब बुद्धि की चंचलता सूचित करते है। हमारे कर्म को निस्तेज बना देते है।

इन 5 उपायों के माध्यम से लोकसंग्रहार्थ कर्म का सुंदर विवेचन

किया गया है। हमारा चित्त या तो अतीत की उधेड़बुन में लगा रहता है या फिर भविष्य का ताना बाना बनता रहता है। भगवान कृष्ण चित्त को अतीत व भविष्य के भटकाव से बचाकर, वर्तमान में केंद्रित करते हैं। हम देह और मन की आसक्ति से ऊपर उठकर आत्मतत्व में चित्त को पैठाकर, अहंकार को छोड़कर उस ईश्वर को देखेंगे, जो हमारे जीवन का आधार है। यहीं लोकसंग्रहार्थ कर्म का स्वरूप है।

अहं ही मनुष्य में आशा, ममता और संताप करता है। यदि अहं कोई ईश्वर को सौंप दे, तो सात्विक दृष्टि से वह मर ही जाता है, और जब व्यक्ति कर्म करता है तो अपने को ईश्वर का यंत्र मानकर।

यही नैष्कर्म्य कहलाता है। जीवन का लक्ष्य है नैष्कर्म्य, जहाँ कर्म तो तीव्र है, पर कर्तापन नहीं है। मनुष्य को पेट भरने के लिए तो कर्म करना ही पड़ेगा, इसलिए कर्म की ओर दुर्लक्ष्य नहीं होना चाहिए। तैरने का ही उदाहरण लें। हम तैरना सीखने सरोवर में गए, भय के कारण जल में उतरने से हमें हिचक हुई। यह अकर्म है। हम जल में उतरकर हाथ पैर मारते हैं। यह कर्म हुआ और जब हम जलपर चित लेटकर चुपचाप पद्मासन लगाकर लेटे रहते हैं, तब यह नैष्कर्म्य की स्थिति हुई। इस नैष्कर्म्य को पाने के लिए कर्म से होकर ही रास्ता है। उसके लिए अकर्म का त्याग करना पड़ता है। नैष्कर्म्य यानी जल पर चुपचाप चित पड़े रहने में कितना तीव्र कर्म लगता। वह तो तैरने वाला ही जानता है।

इसी नियत कर्म को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा गया है- ''स्वधर्म'', ''स्वकर्म''''सहजकर्म'', अंत में इसी को समाहार रूप में आपको ''स्वकर्म'' के पालन में प्रवृत्त होने की अनुशंसा करता है। आप अपने स्वभाव के अनुरूप अध्ययन का जो विषय चुनकर आये है, ईमानदारी से अध्ययन व कर्म करते हुए जीवन का लक्ष्य निधारित करें, व नए उद्यम की ओर निष्काम भाव से बढ़ते हुए सफलता के नए सोपान चुने। समाज के लिए लोकहितार्थ कार्य करे। यही मेरी शुभकामना व संदेश है।

(यह व्याख्यान कृषि महाविद्यालय रीवा के विद्यार्थियों व अध्यापकों को सम्बोधित करते हुए दिया गया। स्वामी जी का परिचय मेरे पति प्रो. मनहर आडिल ने दिया।)

ooo

छः

रींवा में व्याख्यान-तीसरा
''भारत और पश्चिम में नारी की स्थिति और जीवन मूल्य''

आज मेरे समक्ष नारी वर्ग उपस्थित है, सभी मातृवत है। इसलिए सभी का अभिनन्दन करता हूँ। भारत में नारी का विशिष्ट स्थान है। स्वामी विवेकानन्द शिकागो विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लेने गए। वहां उनके कई स्थानों पर भाषण हुए। 25 मार्च 1894 ईस्वी में ''डित्रायेट'' के युनिटेरियन चर्च में उन्होंने ''भारतीय नारी'' विषय पर भाषण दिया। विवेकानन्द ने अपने विषय पर बोलते हुए बतलाया कि ''धार्मिक ग्रंथों में नारी को कितने आदर की दृष्टि से देखा गया है, जहां स्त्रियां ऋषि मनीषी हुआ करती थीं। उस समय उनकी आध्यात्मिकता सराहनीय थी।

पूर्व की स्त्री को पश्चिमी मानदंड से जांचना उचित नहीं है। पश्चिम में स्त्री-पत्नी है, पूर्व में वह मां है। हिन्दू मां भाव से पूजा करते हैं, और संन्यासियों को भी अपनी मां के सामने, अपने मस्तक से, पृथ्वी का स्पर्श करना पड़ता है। भारत में पतिव्रता का बहुत सम्मान है।

आगे उन्होंने कहा- ''भारत में नारी ईश्वर की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है और उसका सम्पूर्ण जीवन इस विचार से ओत प्रोत है कि वह मां है और पूर्ण मां बनने के लिए उसे पतिव्रता रहना आवश्यक है। भारत में किसी भी मां ने अपने बच्चे का परित्याग नहीं किया।''

विवेकानन्द ने कहा कि वे चाहते है कि भारत को उसी देश के मापदंड से मापा जाय, इस देश के मापदंड से नहीं।

अमेरिका में उनके भाषणों पर, कई महिला श्रोता, भारतीय नारियों पर विभिन्न प्रश्न पूछती थीं। एक महिला श्रोता ने सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार

पर प्रश्न किया। विवेकानन्द ने कहा– ''जहां तक उनके सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनों का सम्बन्ध है, पत्नी का दहेज केवल उसकी अपनी सम्पत्ति होती है, वह पति की सम्पत्ति कभी नहीं होती। वह बिना पति की स्वीकृति के दान कर सकती है अथवा उसे बेच सकती है। उसको जो भी उपहार दिए जाते हैं यहां तक कि पति के भी उसी के हैं। यह उनका जैसा चाहे उपयोग करें।''

आगे उन्होंने यह भी कहा– ''भारत में मातृत्व के सिद्धान्त की उपासना करने की शिक्षा दी जाती है। माता पत्नी से बढ़कर होती है। कहा गया है– ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, तत्र रमन्ते देवता।''

स्पष्ट है कि नारी के प्रति भारत व पश्चिम के दृष्टिकोण में अंतर है।

भारत में मातृवत पूजनीय भाव है, तो पश्चिम में भोगवादी दृष्टि है।

27 फरवरी सन 1895 में बुकलिन स्टैंडर्ड यूनियन के तत्वावधान में आयोजित भाषण में ''संसार को भारत की देन धर्म के क्षेत्र में उदार समभाव''–बतलाया।

उन्होंने बुद्ध व ईसा की बात की समानताएं बतलाई। बुद्ध ईसा से कई सौ साल पहले हुए, उनके आचार–शास्त्र वही हैं, जो बुद्ध के थे।

संसार के प्रति भारत का सबसे पहला सन्देश उसकी सद्भावना है। यह धार्मिक सद्भावना स्त्रियों के कारण अधिक व्याप्त है। भारतीय नारी, जीवन मूल्यों की रक्षा करती है। इसलिए वह धर्म की रक्षा करती है।

धर्म क्या है?

धर्म का नाम धर्म इसलिए पड़ा है, कि वह सबको धारण करता है– अधोगति में जाने से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है। धर्म ने सारी प्रजा को धारण कर रखा है, अतः जिससे धरना और पोषण सिद्ध होता हो वही धर्म है, ऐसा धर्मात्माओं का निश्चय है।

धर्म वहन और धारण करने के मामले में नारी व पुरुष समान है। क्योंकि दोनों मनुष्य है। इसमें लिंगभेद नहीं होता।

तो धर्म वह है जो धारण करता है– व्यक्ति का, परिवार का, समाज

का, राष्ट्र का, विश्व का, वे समस्त सिद्धान्त धर्म के अंतर्गत आते हैं, जो विश्व के संतुलन को बनाये रखते हैं। विश्व का संतुलन, मनुष्य के संतुलन पर निर्भर करता है। मनुष्य को छोड़कर विश्व के सभी प्राणी अपनी सहज प्रवृत्ति द्वारा संचालित होते हैं। यह सहज प्रवृत्ति प्रकृति का ही अविच्छेद्य अंग है, अतः उसके द्वारा विश्व के संतुलन को कभी किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचती। वह तो मनुष्य ही है जो सहज प्रवृत्ति को अपनी बुद्धि द्वारा शासित करने की तथा प्रकृति को संचालित करने वाले, छिपे हुए सिद्धांतों को, प्रकट करने की चेष्टा करता है। यह मनुष्य की बुद्धि का कमाल हैं, जो एक ओर उसमें निहित अनन्त सामर्थ को प्रकट करता है, तो दूसरी ओर विश्व के संहार का भी खतरा पैदा कर देता है।

धर्म ही वह तंतु है, जो बिखेरने से बचाता है। यही विवेक है। ज्ञान और विवेक में सूक्ष्म अंतर है। विज्ञान की प्रगति की बदौलत मनुष्य का ज्ञान तो बढ़ा है, पर उसका विवेक उस अनुपात में नहीं बढ़ा है। यह विवेक ही धर्म है। धर्म ही बुद्धि को नियंत्रित करता है।

तो धर्म वह है, जो मनुष्य का धारण और पोषण करे, जो उसे देह और आत्मा दोनों धरातल पर आगे बढ़ाए, जो उसके जीवन को अहिंसा से भर दे। इसके विपरीत जो वृत्ति होती है, उसे अधर्म कहा जाता है। स्वार्थ तोड़ता है, इसलिए वह अधर्म है। निःस्वार्थता जोड़ती है, इसलिए वह धर्म है।

धर्म के मार्ग पर चलने के लिए, स्वार्थ के अतिरिक्त, काम व क्रोध के मार्ग को भी छोड़ना /त्यागना पड़ता है।

''यावत मरणं तावत न विश्रम्भनीयः''। अर्थात मरते दम तक काम क्रोध का विश्वास न करो। स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई तरियानन्द के पास आकर, एक साधक किसी भक्त महिला की प्रशंसा करने लगा, उन्होंने तुरंत साधक को रोक, बंगला की एक कहावत दुहराते हुये कहा–''मरबे नारी उड़बे दाई, तबे नारीर गुण गाई– अर्थात जब नारी मर जाएगी– नहीं जब वह चिता पर जलकर खाक बनकर उड़ने लगेगी, तब नारी के गुण गाना।'' काम का वेग इतना तीव्र होता है।

मनुष्य को जीवन मूल्य की रक्षा में सतत लगे रहना चाहिए। भारतीय नारी जीवन मूल्य की रक्षा करती है। उसके जीवन में कुटुम्बकम का भाव अधिक होता है। उसमें त्याग का भाव अधिक होता है। यदि कठोर सामाजिक बन्धन को थोड़ा शिथिल कर दिया जाय तो वह अधिक परोपकारी कार्य कर सकती है। उसके भीतर देवत्व है, आत्मविश्वास व आत्मसम्मान है। उसके भीतर के देवत्व व कौशल को उभारने की आवश्यकता है। वह सारे कार्य उसी कौशल से कर सकती है, जो पुरुष कर सकता है। मेधा व विवेक में, नारी-पुरुष के बराबर है। वैदिक युग में मैत्रेयी, गार्गी आदि ऋषि स्तर की थी। आज भी पुनः शिक्षा के बढ़ते क्रम में, वैसी ही समानता की स्थिति आ रही है। इसलिए नारियों, जागो, उठो, धर्म, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अगुवाई करो। दृढ़ संकल्प के साथ अपने व्यक्तित्व को निखारो, चरित्र को उद्दीप्त करो और देवत्व भाव से कर्म करो। विश्व तुम्हारा बाट जोह रहा है।

पुरुष नारी के संतुलन की आवश्यकता है। बिना नारी शिक्षा के, समाज व राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। परिवार की पूर्णता भी नारी शिक्षा से है। भारतीय धर्म के मूल्य को पकड़कर नारी विज्ञान व वेदांश के सूक्ष्म मर्म को हासिल कर शिखर तक पहुंच सकती है। मानवता पुष्ट होगी।

आपका भविष्य उज्जवल है। आप जीवन मूल्यों को रक्षा सूत्र बना आगे बढ़ें। आत्मविश्वास व आत्मसम्मान को ढ़ाल बनाएं। सफलता आपके हाथ में होगी।

मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ ।

(यह व्याख्यान शासकीय महिला महाविद्यालय में हुआ । प्राचार्या डॉ. रमोला चौधरी ने परिचय दिया ।)

ooo

सात

रींवा में व्याख्यान-चौथा

''धर्म और विज्ञान''

(स्वामीजी के इस व्याख्यान का विषय धर्म और विज्ञान पर केंद्रित था।)

पूरा व्याख्यान यहां उद्धृत करना सम्भव नहीं, पर स्मरण के आधार पर कुछ बातें अवश्य उद्धृत कर सकती हूँ। उन्होंने कहा था-

विज्ञान ज्ञान की अनुसन्धनात्मक प्रवृत्ति को कहते हैं। जब मन को खोज का विषय बनाकर उस ओर बढ़ते हैं, तब वह धर्म की प्रवृत्ति होती है। विज्ञान व धर्म में कोई विरोध नहीं है। भौतिक जगत के अविष्कारों को विज्ञान नहीं, विज्ञान का चमत्कार कहते हैं। हम इन्द्रिय जगत के नियमों को पकड़ते हैं तब विज्ञान का विषय होता है। मनुष्य के भीतर ईश्वरत्व होता है। इसी अर्थ में वेदांत कहता है कि मनुष्य ही ईश्वर है। बस अज्ञान की परतें खुलती हैं, और उसके भीतर का छिपा हुआ ईश्वरत्व प्रकट हो जाता है। विज्ञान मनुष्य के इसी ईश्वरत्व को उत्तरोतर उद्घाटित करता है। ईश्वर व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है। वह तो विश्व में सर्वत्र व्याप्त नियम है। धर्म इसी सर्वव्यापी नियम की खोज है। विज्ञान भी इसी खोज का नाम है। अत: धर्म और विज्ञान विरोधभासी नहीं है, बल्कि एक दूसरे के पूरक है। विज्ञान के नए आविष्कारों से चमत्कृत व्यक्ति सोचता है कि- 'ईश्वर है भी या नहीं?' बौद्धिक वर्ग ईश्वर के अस्तित्व के प्रति शंकालु हो गया है। वह समझता है कि विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों ने ईश्वर के मिथ्यात्व को सिद्ध कर दिया है तथा आज ईश्वर का कोई स्थान नहीं रह गया है। पर हम चिंतन व मनन करें और अपने युग की प्रगति का अवलोकन करें, तो हमें

प्रतीत होगा कि नवीनतम वैज्ञानिक अन्वेषण, ईश्वर और तत्वज्ञान के मिथ्यात्व का बोध नहीं कराते, वरन् उसके अस्तित्व और उसके महत्व को ही पुष्ट करते है। तात्विक ज्ञान की दृष्टि से वेदांत की ज्ञान प्रणाली सर्वोत्कृष्ट है। वेदांत की दृष्टि से प्रत्येक जीव ही शिव है, हर आत्मा ही परमात्मा है, विज्ञान जीव की अज्ञानता की परत को खोलता है। जीव के भीतर अनन्त शक्ति है। विज्ञान उस शक्ति को उद्घाटित करता है। जब मन की शक्ति उद्घाटित होती है, तब वह धर्म की ओर प्रवृत्त होता है। ज्ञान की खोज विज्ञान है और मन की खोज धर्म, फिर विज्ञान व धर्म एक दूसरे से अलग कैसे हैं?

दोनों एक दूसरे के पूरक है।

पशु और मनुष्य में अंतर है। मनुष्य अपने मन का नियंत्रण नहीं कर सकता। वह अपनी गतिविधियों का साक्षी नहीं बन सकता, क्योंकि यह अपनी सहज प्रवृत्तियों के द्वारा परिचालित होता है। पर मनुष्य का मन इतना विकसित है कि वह अपनी क्रियाओं को समझने और पकड़ने में समर्थ होता है । वह अपनी क्रियाओं को सहजता से देख सकता है। यही उसकी विशेषता है।

यह विशेषता उसमें सम्भावना के रूप में छिपी होती है। यह आत्मविकास जब पूर्ण मात्रा में प्रकट होता है- व्यक्ति पूर्णत्व की प्राप्ति करता है- तब वह बुद्ध, कृष्ण, राम, ईसा, रामकृष्ण बन जाता है। इसे ही ईश्वरत्व या देवत्व कहते हैं। पशु में यह विकास नहीं होता। मनुष्य में यह विकास होता है। जिस उपाय से मनुष्य अपनी क्षमता का विकास करता है वही धर्म है। इसलिए धर्म व विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं।

स्वामी जी के धर्म और विज्ञान विषय पर हुए व्याख्यान का यह कुछ अंश है।

यह व्याख्यान सुनकर रीवा की जनता चमत्कृत व विमुग्ध हो गयी। उस नितांत पिछड़े इलाके में ऐसी दिव्य वाणी ! वह 1967 का वर्ष था। आज से 54 वर्ष पूर्व। यानी आधी सदी पहले का सामाजिक परिवेश।

व्याख्यान वाली रात भैया बहुत संतुष्ट व तृप्त थे। उनके मुख पर संतोष

व सुख का भाव था–मानो कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हों। हम सबने ऐसा ही महसूस किया। सोने से पूर्व मेरे नन्हें बेटे को बहुत खिलाये, गोद में ले कर घूमाते रहे, भजन भी गाए, चुटकियां बजा बजा कर। उषा दीदी के खाने की प्रशंसा करते रहे बार–बार।

और फिर उन्होंने विश्राम किया। गिरीश भाई अपने घर व हम अपने घर चले गए।

(यह व्याख्यान रींवा के सार्वजनिक टाउन हॉल में दिया गया था। यह व्याख्यान का सार है। कमिश्नर पिशरोडी भावमय होकर सुन रहे थे, भाषण के बाद वे स्वामीजी से प्रणम्य भाव से मिले। यहां स्वामी जी का परिचय मैंने दिया था।)

ooo

आठ

व्याख्यान-पांचवा

सीहोर में स्वामी आत्मानंद जी का व्याख्यान
(लोकहित के लिए निष्काम कर्म)

हम रीवा से सीहोर 1968 के अंत में आये। 1975 जून तक रहे। इस बीच स्वामी जी 4 बार सीहोर आये। अचानक आते एक घंटा रुकते। भोजन करते व चले जाते। हम कोई कार्यक्रम नहीं करवा पाते। 4थी बार वे 1973 के किसी माह में आये। हम नारायणदास कम्पाउंड में बने कार्टर में रहते थे। उस दिन कम्पाउंड में भागवत चल रहा था। 3 बजे के बाद करीब 4 बजे 2रा सत्र शुरू होता था।

स्वामीजी जैसे ही हमारे घर से निकलकर कार में बैठने लगे, सेठानीजी तेजी से आई और भैया को प्रणाम की। मैंने भैया के बारे में बताया कि वे रामकृष्ण आश्रम से जुड़े हैं।

''भोपाल आते हैं, तो मुझे आशीर्वाद देने व थोड़ा विश्राम करने आ जाते हैं।'' बस सेठानी आनन्दित होकर भैया से विनती करने लगी कि आप हमें भी थोड़ा आशीर्वचन स्वरूप कुछ आध्यात्मिक बातें बता दें, हमारा अहोभाग्य होगा।

भैया धर्म संकट में पड़ गए। मेरी ओर, मेरे पति की ओर देखने लगे। मेरे पति ने विनम्रता से कहा- ''भैया इनकी बात रख लीजिए। थोड़ा समय दे दीजिए। ''

सेठानी बोली- ''स्वामीजी आप निष्काम कर्म पर ही गीता का उपदेश दे दीजिए।''

स्वामीजी ने कहा– ''मैं व्यासगद्दी पर नहीं बैठ सकता, क्योंकि भागवत का क्रम बना रहना चाहिए।''

इतने में पंडित जी भी आ गए। वे हाथ जोड़कर बोले– ''स्वामी जी अभी सत्र शुरू होने में थोड़ा समय है। आप श्रोताओं के सामने ही प्रवचन दे सकते हैं। मुझे भी सौभाग्य मिलेगा आपको सुनने का। सेठानीजी जी के साथ, मेरी भी विनती सुन लीजिए। आइये। बस थोड़ा श्रोताओं को भी अच्छा लगेगा। मुझे तो रोज ही सुन रहे है। आप जैसे ज्ञानी का मैं सम्मान करता हूँ।''

भैया के लिए यह सुखद आश्चर्य का विषय था कि कोई पंडित उन्हें सादर आमंत्रित करे।

अखिर भैया मान गए। मंच के सामने माईक रख दिया गया। सेठानी जी व पंडित जी ने पुष्प गुच्छ व माला से स्वागत किया। कार को बाउड्री से बाहर सड़क किनारे खड़ा कर दिया ड्राइवर ने।

सेठानी के आग्रह पर मैंने केवल 7–8 वाक्यों में स्वामी जी का परिचय दिया। भैया का व्याख्यान शुरू हो गया–

''आप सभी का अभिनन्दन आप यहां भागवत कथा सुनने के लिए एकत्रित है। अकस्मात मेरा आगमन हुआ और स्नेहभरा आग्रह हुआ कि मैं आपसे कुछ आध्यात्मिक संवाद करूं। बहनजी व पंडित जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूं कि आपसे संवाद करने का अवसर मिला। भगवतगीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने का उपदेश दिया। यह युद्ध लोकहित के लिए युद्ध था। लोकहित या लोकसंग्रह के लिए किया जाने वाला कर्म सदा हितकारी होता है। ऐसा कर्म करने वाला पुण्य का भागी होता है। केवल अपने लाभ या हित के लिए कर्म करने वाला पुण्यात्मा नहीं होता। आखिर अनासक्त होकर कर्म कैसे करें? आसक्ति 2 प्रकार की होती है– कर्मासक्ति और फलासक्ति। यदि मनुष्य अपने को भगवान का यंत्र माने, तो इससे कर्तापन का भाव दूर होगा, साथ ही भोक्तापन भी नष्ट होगा।

फलस्वरूप कर्म ऊपर से सांसारिक दिखते हुए भी सांसारिक नहीं रह जाते। जब कर्म को करने से हमारा मन विक्षिप्त या व्याकुल हो जाये तो

वह बन्धन है। लेकिन जब कर्म को करने से ऐसा लगे कि हमने ईश्वर की पूजा ही की है, तो वह बन्धननाशक है। यह तर्क का विषय नहीं है, साधना का विषय है, अनुभूति का विषय है।

भगवान कृष्ण अर्जुन को अनासक्त कर्म की व्याख्या करते हुए राजा जनक का उदाहरण देते हैं कि राजा जनक अनासक्त कर्म करते थे। लोकहित व लोकसंग्रह के लिए अन्याय को समाप्त करने के लिए मनुष्य को कर्म करना चाहिए। समाज में मर्यादा की रक्षा होनी चाहिए। भगवान कृष्ण अनासक्त कर्म के साथ, सामाजिक मर्यादा की भी बात करते हैं। उनका कहना है कि समाज में श्रेष्ठ लोग जिस प्रकार का आचरण करते हैं, दूसरे लोग भी वैसा ही करते हैं। इसलिए श्रेष्ठजनों को बड़ी सावधानी के साथ अपना व्यवहार करना चाहिए।

इसके कुछ उदाहरण देता हूँ, ताकि बात स्पष्ट हो जाये। महात्मा गांधी जब टहलने के लिए जाते थे, तो दोनों ओर एक-एक युवती के कंधे पर हाथ रखकर चलते। आश्रम के वरिष्ठ लोगों ने आपत्ति की, कहा- ''बापू यह ठीक नहीं है, इससे आश्रम में अव्यवस्था फैलेगी।''

बापू ने आश्चर्य से पूछा- ''ऐसा क्यों? मैं तो बूढ़ा आदमी हूँ, मेरे इस काम से लोग अव्यवस्था क्यों फैलाऐंगे।''

लोगों ने कहा- ''नहीं बापू, आपकी नीयत पर हमें तनिक भी सन्देह नहीं है। हमें मालूम है कि आपका मन पवित्र और निर्विकार है, पर आश्रम के लोग इसे उदाहरण बना लेंगे। इसलिए लोगों के सामने उदाहरण रखने की दृष्टि से आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। बापू ने चिंतन किया कि ''यह सही है।''

बस इसी को लोकसंग्रह या लोकहितकारी बात कहते हैं।

यानी मेरी बात सही हो सकती है, पर लोकमर्यादा की रक्षा के लिए मुझे वह कर्म नहीं करना चाहिए।

एक दूसरा उदाहरण- स्वामी विवेकानन्द विश्वप्रसिद्ध बनकर विदेशों से भारत लौटे थे। वे अमरनाथ की यात्रा पर गए। साथ में भगिनी निवेदिता

आदि उनकी शिष्याएं थीं। अमरनाथ के रास्ते में अन्य संन्यासियों ने विनम्र भाव से स्वामीजी से अनुरोध किया कि उनका स्वयं का तंबू साधुओं के साथ रहेगा और उनकी शिष्यों का तंबू कुछ दूर अन्य महिलाओं के साथ। स्वामीजी ने सहर्ष मान्य किया। सन्यासियों ने स्वामीजी से यही कहा ''आप तो सर्वसमर्थ है, आपके लिए नर और नारी का भेद तिरोहित हो गया है, तथापि मर्यादा की रक्षा के लिये, ऐसा ही करना उचित होगा।''

स्वामीजी ने सहर्ष उनकी बात को मान्य किया।

मैं एक उदाहरण और बताता हूँ।

जब में वसिष्ठगुफा में था, स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी के दर्शन करने उस अनवहल के एक प्रसिद्ध सन्यासी पधारे। वे महिलाओं से घिरे हुए थे और पुरुष भक्त पीछे आ रहे थे। पुरुषोत्तमदासजी ने बड़े सुंदर ढ़ंग से स्वामीजी को समझाया–

''आप संन्यासी है। समाज आपसे प्रेरणा लेता है और मर्यादा सीखता है। महिला भक्तों पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर आप जहां कहीं जा रहे, जहां कहीं जाएं. पुरुष भक्तों से घिरे रहें और महिलाएं एक दूरी बनाकर रहें।'' तो यह लोकसंग्रह या लोकहित की शिक्षा है, समाज में मर्यादा की स्थापना है।

आज हमारे देश में इसी लोकसंग्रह या लोकहित या लोक मर्यादा की भावना का नाश हो रहा है। सत्ता में व्यक्ति तो आ जाता है। ऊंचे पद पर राजनीतिक दांव पेंच के कारण पहुंच जाता है, पर पद के मर्यादा की रक्षा करना न सीखने के कारण, कलंकित कर देता है।

कभी–कभी समाज में अपने कदाचरण का विष भी बिखेर देता है। श्रेष्ठ स्थान पर बैठ जाने से ही, मनुष्य श्रेष्ठ नहीं हो जाता। उसे अपने पद की गरिमा के अनुसार ज्ञान व आचरण भी श्रेष्ठ होना चाहिए।

इस दृष्टि से जब हम उच्च पदों पर बैठे व्यक्तियों को देखते हैं, तो कितनी निराशा होती है? हम चारों ओर त्याग और चरित्र गठन की बात सुनते हैं, पर केवल बात ही सुनते हैं, त्याग और चरित्र कहीं दिखाई नहीं

देता। आज समाज में ऐसे लोग कहाँ है जिन्हें समाज में मर्यादा स्थापित करने की चिंता हो, जो स्वयं अपने आचरण का आदर्श लोगों के समक्ष रखकर लोकसंग्रह, लोकहित की भावना से युक्त हो। कुछ उंगलियों पर गिने जाने वाले लोग हैं, उन्हीं के पुण्यप्रताप के बल पर, आज हमारा समाज टिका हुआ है और मर्यादा बनी हुई है। पुत्र, पिता व गुरुजनों के आचरण का ही अनुकरण करता है।

एक उदाहरण बताता हूँ। हमारे यहां एक नए जिलाधीशा आये। वे समय से आधा घण्टे पहले ही अपने कार्यालय में बैठने लगे।

बस फिर क्या था, उनके मातहत काम करने वाले दूसरे अधिकारी भी अपने-अपने कार्यालय में समय पर उपस्थित होने लगे। जो हमेशा विलम्ब से आते थे, वे भी समय पर दफ्तर आने लगे। यह क्यों हुआ?

श्रेष्ठ अधिकारी ने समय पर आना शुरू किया। नीचे वाला सदा ऊपर के अधिकारी का अनुसरण करता है।

तो मैं अपनी बात को समेटता हूँ। भगवान कृष्ण अर्जुन से यही कहते हैं कि ''हे अर्जुन भले ही तुम्हें अपने लिए कर्म करना आवश्यक न प्रतीत हो तथापि तू लोकसंग्रह, लोकहित के लिये कर्म करो। लोग तुमसे सीखें कि धर्म की रचना के लिए युद्ध कैसे किया जाता है। विश्व को दिखा कि अधर्म का साथ देने वाले लोग भी अधर्मी के समान दंडनीय हैं। देख मैं तेरे सामने खड़ा हूं। मैं उदाहरण हूँ तेरे सामने। मुझे कर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं, फिर भी मैं अनवरत कर्म में लगा हुआ हूँ। केवल लोकसंग्रह यानी लोकहित के लिए।''

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे-

''स्वयं के बारे में पहले सोचना ही सबसे बड़ा पाप है। जो मनुष्य यह सोचता रहता है कि मैं पहले खा लूं, मुझे ही सबसे अधिक धन मिल जाये, मैं ही सर्वस्त का अधिकारी बन जाऊं, मेरी ही सबसे पहले मुक्ति हो जाय तथा मैं ही औरों से पहले सीधा स्वर्ग को चला जाऊ, वह निश्चय ही स्वार्थी है।''

''निस्वार्थ व्यक्ति तो यह कहता है, मुझे अपनी चिंता नहीं है, मुझे स्वर्ग जाने की भी कोई आकांक्षा नहीं है, यदि मेरे नरक जाने से किसी को लाभ हो सकता है, तो मैं उसके लिए भी तैयार हूं। यह नि:स्वार्थता ही धर्म की परीक्षा है। जिसमें जितनी अधिक निस्वार्थता है, वह उतना ही आध्यात्मिक है।''

''तो भाईयों और बहनों पूज्य पंडित जी, आदरणीय बहनजी, मैं आपसे विदा लेना चाहता हूं। आप मुझे आज्ञा दें और पंडितजी आप व्यासगद्दी पर विराजें और भागवतकथा का वाचन कर श्रोताओं को लाभान्वित करें। सभी को नमन!''

इस तरह स्वामीजी ने सबको मुग्ध कर दिया अपने व्याख्यान से।

सेठानीजी ने अपने घर चाय व फलाहार का निमंत्रण दिया, पर भैया ने क्षमा मांगते हुए प्रस्थान किया।

कार स्टार्ट किया ड्राइवर ने। भैया ने जाते-जाते मेरे सिर पर हाथ फेरते और इनके कंधे को सहलाते हुए बोले- ''तुम दोनों मुझे अचानक अवसर देकर माइक पर खड़ा कर देते हो। बड़ी विचित्र स्थिति हो जाती है सत्या।'' इन्होंने मसखरेपन से कहा- ''अउ तंय ह सबो परीक्षा म पास हो जथस भैया। हम जानथन।''

और भैया का ठहाका गूंजता रहा। कार आगे बढ़ गयी तेजी से।

हम हाथ हिलाते रहे। वे चले गए।

सीहोर में यह अंतिम मुलाकात थी। हम 4 जून 1975 को रायपुर स्थानांतरित होकर आ गए।

ooo

नौ

प्रेरक स्वामी आत्मानन्द जी

आत्मानन्द जी, विवेकानन्द जी के एक सिद्धान्त- ''बनो और बनाओ''- का अनुसरण अवश्य करते थे। एक उदाहरण प्रस्तुत है। ग्वालियर के आश्रम परिसर में तैरने के लिए एक ताल बना उसके उद्घाटन में स्वामीजी मुख्य अतिथि थे। उन्होंने बहुत ही अनोखे तरीके से उद्घाटन किया। फीता काटने के बाद वे ताल में कूद गए, तैर कर पार भी हो गए। इससे बच्चों को प्रेरणा मिली। वे अपनी कही बातों को करके दिखाते थे।

उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता थी- सबको आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करना, विशेष तौर पर शिक्षा के क्षेत्र में।

आश्रम में काम करने वाले बहुत से युवक पढ़ाई छोड़ चुके थे। उन्हें आगे पढ़ने के लिए प्रेरित किया, पढ़ाई में मदद की, वे विश्वविद्यालय की पढ़ाई भी पूरी कर लिए। आज वे उच्च पदों पर कार्य कर रहे हैं। वे युवा विद्यार्थियों के आध्यात्मिक जीवन को बनाने में मदद करते थे।

परिवार - आत्मानन्द जी कुल 5 भाई थे, एक बहन थी। उनमें से केवल एक भाई गृहस्थ बने----3रे क्रम के भाई -डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा। बहन भी गृहस्थ बनीं। डॉ नरेन्द्रदेव वर्मा हिंदी के प्राध्यापक, कवि, नाटककार, भाषावैज्ञानिक एवं संगीत में निपुण थे। छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य के अध्येता व रचयिता भी थे। छत्तीसगढ़ प्रदेश का राज्यगीत ''अरपा पैरी के धार महानदी हे अपार''-उन्हीं की रचना है। उनका निधन 39 वर्ष की अल्पायु में हो गया। उस समय वे ही एकमात्र पूरे परिवार के पालक थे। क्योंकि आत्मानन्दजी के अन्य तीनों अनुजों ने विवाह नहीं किया था, वे सभी आश्रम से जुड़े थे। दो अनुज-देवेंद्र एवं राजेन्द्र सन्यास ग्रहण कर चुके थे, तथा सबसे छोटे अनुज भी ब्रह्मचारी ही है। डॉ. ओमप्रकाश वर्मा सबसे छोटे

अनुज हैं जो रविशंकर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, अब सेवानिवृत हो गए हैं। वे कोटा स्थित विवेकानन्द विद्यापीठ का संचालन करते हैं। वे भी गृहस्थी से दूर ही हैं।

जब अनुज डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा का निधन हुआ, तो आत्मानन्दजी के भीतर का मातृभाव और भ्रातृभाव भी जागा। उस समय वे गृहस्थ भक्त व आत्मीयजन में भेदभाव न करते हुए अपने अन्तस् के मातृभाव को जगाते हुए परिवार को ढांढ़स बंधाया, वह अदभुत था। छोटे भाई की पत्नी मानों पुत्री रूप में खड़ी थी, जिस पर छोटे बच्चों का भार था। कैसी कठिन घड़ी रही होगी वह, जब स्वामीजी सन्यासी के रूप में निर्लिप्त होकर, वृद्ध पिता, विधवा बहू व 5 बच्चों को ढाढ़स बंधाते हुए, मातृभाव से अडिग खड़े रहे।

आंसुओं को पी जाना व भौतिक दुखों को नश्वर समझना–शायद यही संन्यास का लक्षण होगा।

निश्चित रूप से मृत्यु तो मोक्ष है, पर गृहस्थ के लिए परिवार की गाड़ी खींचने की समस्या रहती है। पर ईश्वर वह नैया भी पार लगा देते हैं।

आत्मानन्दजी इस संकट की घड़ी में भी अडिग रहे– उनकी यही अडिगता प्रणम्य है।

ooo

दस

स्वामी आत्मानन्दजी से प्रथम भेंट

आत्मानन्दजी की माता भाग्यवती अत्यंत धार्मिक विचारों की, सरल, सीधी व प्रेमिल महिला थी। छत्तीसगढ़ में मां को ''दीदी'' भी सम्बोधित करते हैं। आत्मानन्दजी व सभी लोग उन्हें दीदी ही कहते थे। आत्मानन्दजी की छोटी बहन लक्ष्मी और मैं एक ही कालेज में पढ़ती थी। वह मुझसे एक वर्ष जूनियर थी। कभी-कभी हम दोनों एक साथ कॉलेज से निकल कर बैजनाथपारा स्थित उनके निवास में जाते, दीदी की बनाई चाय के साथ पराठे खाते व खूब बातें करते। ''दीदी'' की मेरी मां के साथ प्रगाढ़ मित्रता थी। मैं भी अपनी माता को ''दीदी'' कहकर पुकारती थीं। मैं जब बी.ए. अंतिम की कक्षा में थी- तब दिसम्बर 1962 में राजकुमार कालेज में एक अन्तर महाविद्यालयीन वादविवाद प्रतियोगिता आयोजित हुई थीं। विषय व माध्यम अंग्रेजी में था। मैं स्कूल कालेज के दिनों में वादविवाद में भाग लिया करती थी। मेरी इच्छा हुई भाग लेने की। विषय था - The best training for youth is absolutly freedom from rules regulation and discipline. - इसके विपक्ष में बोली थी ।

यथासमय प्रतियोगिता हुई। परिणाम सभी समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। स्वामी जी ने समाचार पढ़कर, सन्ध्या भजन में आई ''दीदी'' से पूछा- ''दीदी यह सत्यभामा वर्मा किसकी बेटी है, जो वादविवाद में प्रथम आयी है? जानती हो क्या?'' दीदी ने हामी भरी, ''यह तो हमारी अपनी हैं बाबू, जमुना दीदी की बेटी है।'' जमुना दीदी यानी मेरी मां। मेरी मां दीदी के साथ भजन समूह में बैठी थी। वे प्रसन्नता से हंसने लगे। बोले ''अगली बार उसे लेकर आना दीदी। उसे आशीर्वाद दूंगा। वादविवाद में प्रथम आयी है।''

आश्रम के समीप ईदगाहभाठा में हमारा घर था। मेरे पिता के.एल.वर्मा पी. जी बी टी कालेज में सहायक प्राध्यापक थे। स्वामी जी के पिता धनीराम वर्मा जी भी पहले शिक्षक थे, फिर उन्होंने सत्ती बाजार में पुस्तक व स्टेशनरी की दुकान खोल ली थी। वे सामाजिक भी थे। मेरे पिता से उनकी मित्रता थी। वे कभी-कभी पर आकर, पिताजी के पास बैठते थे।

पहले घरों में मर्यादित आचरण व व्यवहार होता था। बैठक में केवल चाय पानी देने जाने तक ही, हम लड़कियों का सम्बन्ध रहता था।

हम, बुजुर्गों को प्रणाम करके, अंदर चले जाते थे।

अगले रविवार को ''दीदी'' हर बार की तरह लक्ष्मी के साथ आई, और मुझसे भी आश्रम चलने को बोली। स्वामीजी ने बुलाया है, ''क्यों बुलाया है?'' मैं सोचने लगी। ''संन्यासी से क्यों मिलू? मुझे तो दीक्षा नहीं लेनी है।'' लक्ष्मी के सगे भाई हैं, ''दीदी'' के अपने पुत्र हैं। मेरी माँ भजन सुनने जाती है तो ठीक है, पर मैं क्यों जाऊं?''

बहुत सोचने के बाद, अंदर से डरते-डरते, सबके साथ आश्रम चली गयी। पर यह क्या?

आश्रम में प्रवेश करते ही वरामदे में हारमोनियम बजाते हुए, भजन गाते हुए, एक दिव्य विभूति के दर्शन हुए। गेरुवे वस्त्र में विशालकाय गरिमामय शांत प्रसन्न विभूति विराजमान थे। हम बैठ गए। भजन चलता रहा।

कुछ समय बाद विराम हुआ। तब ''दीदी'' ने कहा- ''बाबू एदे, सत्यभामा ल लेके आय हंव। ले दे के लक्ष्मी संग अइसे।''

मैंने उठकर प्रणाम किया। वे हंसकर बहुत स्नेह से बोले- ''आओ सत्या यहां बैठो। मैं तो समाचार पत्र में, तुम्हारा नाम पढ़कर बहुत खुश हुआ।''

''तुम्हें बधाई। मैं तुम्हें विवेकानन्द साहित्य पढ़ने के लिए देना चाहता हूँ। तुम डिबेटर हो, तुम्हें अच्छा नॉलेज होना चाहिए।''

भजन समाप्त हो चुका था। सब जाने लगे। बाद में मुझे उन्होंने

विवेकानन्द का शिकागो भाषण से सम्बंधित पुस्तक दी। रामकृष्ण परमहंस का जीवन चरित व मां शारदा का जीवन चरित पढ़ने के लिए दिया।

विवेकानन्द आश्रम तब नया-नया ही बना था।। मैंने केवल नाम सुना था, आज दर्शन भी हुए। मैं नई ऊर्जा से भरकर घर लौटी।

वह दिन मेरे जीवन का यादगार दिन था। मैं पूरी तरह आश्रम से जुड़ गई। अगले रविवार को मैंने पुस्तक वापस की। उन्होंने दूसरी पुस्तक दी।

यह क्रम मई माह 1963 तक ही चला, फिर मैं पिताजी के साथ छतरपुर चली गयी। वहां एम.ए. में एडमिशन ली। लेकिन तब तक मैं विवेकानन्द भावधारा में बह चुकी थी। विवेकानन्द साहित्य ने, मेरे चिंतन को बदल दिया। विवेकानन्द भावधारा को मेरे मन में सिंचित करने का श्रेय स्वामी आत्मानन्दजी को ही जाता है। ''दीदी'' का नियमित हमारे घर आना, मेरे लिए वरदान बन गया।

इन्हीं माता भाग्यवती का निधन पंचतरणी गंगा के तट पर 66 वर्ष की आयु में श्रावणी पूर्णिमा के दिन हुआ।

०००

ग्यारह

माता और पुत्र

(मृत्यु की भविष्यवाणी)

9 अगस्त 1976 की घटना है, जब माता भाग्यवती अपने पति धनीरामजी एवं ज्येष्ठ पुत्र आत्मानन्दजी के साथ पंचतरणी गंगा गयी थीं। उन्होंने एक बार स्वामी जी से कहा था कि उनकी मृत्यु गंगा के तट पर होगी और साथ में ज्येष्ठ पुत्र और पति भी रहेंगे। इस साथ को स्वामी जी टालना चाहते थे, परन्तु नियति को कौन टाल सकता है? स्वामी जी ने अपनी डायरी में इसका उल्लेख किया है। कभी चर्चा के समय भी उल्लेख किया था।

इसके पहले भी, माताजी 1969 में स्वामी निखिलानन्द (देवेंद्र) एवं स्वामी सत्यरूपानन्द (संतोष) एवं पुत्री लक्ष्मी के साथ अमरनाथ गयी थीं।

वहां एक खास घटना घटी थी। अमरनाथ के दर्शन करने के बाद लौटते समय, सब अलग-अलग हो गए। लक्ष्मी व भाग्यवती माता जी साथ थीं।

रास्ते में एक झरना मिला। माता जी झरने में पानी पीने लगी। उसके बाद पहाड़ की तरफ देखते हुए, हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। लक्ष्मी जब बुलाने गयी, तो उसने कहा-''तुमने मेरा सारा आनन्द मिटा दिया। अभी पहाड़ के ऊपर मुझे शंकर भगवान और मां पार्वती के दर्शन हो रहे थे।''

''मैं प्रार्थना कर रही थी कि मेरी मृत्यु के समय, तुम मुझे फिर अपने पास बुला लेना। भगवान ने मुझे यह वरदान दे दिया। अब तुम दुबारा यहां की चढ़ाई में, मरने के लिए आना। अभी लौटो जल्दी।''

ये सारी बातें सच साबित हुई। मां तो मां होती है। स्वामीजी ने साष्टांग प्रणाम कर अंतिम विदाई दी। आंखों से दूसरी गंगा निकल पड़ी। उसका वेग

इस गंगा के वेग से कम नहीं था।

स्वामी जी के जन्म व अपनी मृत्यु के बारे में ''दीदी'' अक्सर मेरी माँ से भी चर्चा किया करती थीं। वे हमेशा यही बात कहती थीं कि ''शंकर जी ह सपना दे के बाबू बन के जन्म ले हे दीदी, मैं ह गंगा तीर बाबू के आंखों के सामने प्राण त्यागा हूं। '' फिर वे आंख बंद कर लेती थीं। मेरी मां तो साधारण गृहस्थ थीं। वे भावुक होकर उनके कंधे में हाथ रखकर बोलती- ''अइसन झन बोल भागो। मरे के बात मत कर।'' और दोनों बहनें एक दूसरे का हाथ पकड़कर चुप हो जातीं।

अन्तिम दिनों की बात है। हर वर्ष ग्वालियर में राजमाता सिंधिया अपने पति की स्मृति में एक आध्यात्मिक सम्मेलन आयोजित करती थीं।

स्वामीजी वहां अवश्य जाते थे। ग्वालियर आश्रम परिसर में हनुमान मंदिर की स्थापना स्वामीजी के कर कमलों से की गई थी, जिसमें, मूर्ति के चयन से प्राण प्रतिष्ठा तक उन्हीं के हाथों हुई थी- वहां वे जब भी आते, तो कोई व्याख्यान नहीं-कह कर निकल जाते थे, लेकिन 1989 में मूर्ति स्थापना के समय उन्होंने अपना अंतिम व्याख्यान दिया।

सम्भवत: उनको आभास था कि वे 60 वर्ष पूरा नहीं कर पाएंगे। इसीलिए उनके कामों में तेज गति थी। वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। जैसा कि सबको विदित है- 27 अगस्त 1989 को राजनांदगांव से 13 कि. मी, पहले, जीप दुर्घटना में वे ग्रस्त हो गए व चिरनिद्रा में लीन हो गए।

उनके ब्रह्मलीन होने के समाचार से मैं स्तम्भित थी। क्योंकि कुछ दिन पूर्व ही मेरे घर पर चिर परिचित ठहाके लगाए थे। उनकी हंसी से मेरे घर के आसपास का परिसर भी गुंजायमान हो उठता था। उस दिन मेरे निवास में पुरुषोत्तमलाल कौशिक भी बैठे थे, रामलाल चन्द्राकर भी बैठे थे।

स्वामी जी का विनोदी स्वभाव, उस दिन चरम पर था-क्या यह उनके अंतिम मिलन का संकेत था?

ooo

बारह

अमृतसर के अध्यात्म्य सम्मेलन में स्वामी आत्मानन्द

स्न 1978-80 में अमृतसर में भारतवर्ष के सभी शंकराचार्य, धर्माचार्य और प्रमुख धर्माताओं का एक बड़ा अखिल भारतीय अध्यात्म्य सम्मेलन रखा गया था। सम्मेलन का निमंत्रण स्वामीजी को मिला। वे एक दिन पहले ही वहां पहुंच गए। पहले दिन परिचय का कार्यक्रम था। वे सबसे कम उम्र के थे, इसलिए उन्हें सबसे पहले भाषण देने को कहा गया।

सभी के लिए अचरज वाली बात थी। अगले दिन से उनका भाषण अंत में रखा गया, जिसे सुनने के लिए सभी बैठे रहते थे। अंतिम दिन शंकराचार्यों ने बैठकर निर्णय लिया कि उस दिन का अध्यक्ष स्वामी आत्मानन्द को बनाया जाया। उन्होंने स्वामी आत्मानन्द जी को बुलाया और कहा कि- ''आज की अध्यक्षता आप करेंगे।''

स्वामीजी हाथ जोड़कर बोले--''आप किसी और को अध्यक्ष चुन लें।''

कई बार ''ना--ना'' सुनने के बाद एक शंकराचार्य ने कहा-'' मैं आदेश देता हूँ कल की अध्यक्षता तुमको करनी होगी।''

स्वामीजी लाचार हो गए और सभासद मुग्ध हो गए। आत्मानन्दजी की जय-जयकार होने लगी। सम्मेलन का कार्य सम्पन्न हो गया। आत्मानन्द जी का नाम पूरे देश में फैल गया।

उनकी वक्तत्व शैली, ओजपूर्ण स्वर, व सहज, सरल व्यवहार, विनम्रता, सबसे घुलमिल जाने की कला-अदभुत थी। सभी उम्र के लोगों में शामिल हो जाना, अमीर-गरीब एक समान, अशिक्षित-शिक्षित। सभी से एक समान मिलना-उनके व्यक्तित्व का अनोखा पक्ष था।

तेरह

विनोदी स्वभाव के अनेक रंग

आत्मानन्दजी का विनोदी स्वभाव सबके लिए बहुत आनन्दवर्धक होता था। जैसे मेरे पति को बहुत लाड़ करते थे। जब भी घर आते तो उन्हें चिढ़ाने के लिए मुझे कहते-

''बपुरा मनहर तुम्हारी सेवा करते करते थक गया है।''

और स्वयं ही ठठाकर हंस पड़ते। मेरे पति भी शिकायत भरे स्वर में कहते ''भैया मुझे बपुरा बोले न, तो चाय नहीं पिलाऊंगा।''

भैया तुरन्त हंसते हुए बोलते- ''जैसे चाय तू ही बनाएगा न? वो तो वही सत्या ही भजिया के साथ चाय बनाएगीं। पर तू 'सर्व' जरूर कर देना। यदि 'नर्वस' होगा, तो मैं तुझे 'सर्व' कर दूंगा।''

और फिर खुद ही हंसने लगते। उनका यह विनोदी स्वभाव जग जाहिर था। यदि मैंने भजिया बनाया--तो वे तुरंत तलने आ जाते थे किचन में।

एक बार छोटे भाई राजेन्द्र यानी स्वामी त्यागात्मानन्द को लेकर किसी महत्वपूर्ण विषय पर बात करने आये घर पर। बात बस्तर की घटना की जानकारी लेनी थी। आधे घण्टे तक बात चली। फिर मैंने कहा-.''भैया अब भजिया खा लेते हैं। वे तैयार हो गए। उन्हें 6 बजे से पूर्व आश्रम पहुंचना था। रविवासरीय प्रवचन था। वे राजाभैया को बोले- ''मैं प्याज काटता हूँ, तुम प्लेट सर्व करो, मनहर तुम बेसन घोलो।''

मेरे पति ने उनके हाथ से प्याज व चाकू छीनकर स्वयं काटने बैठ गए। यह क्या आंखों से आंसू बहने लगे। ''हाय-हाय'' करने लगे, तो भैया ने हंसते हुए कहा- ''तेरे बस का नहीं है इसलिए तो मैं काट रहा था। अब पूरा तू ही काट। बड़ा शेर बना फिरता है न?''

''बपुरा मनहर'' और वे बच्चों की तरह पुलकित होकर आनन्द लेने लगे।

वे गम्भीरता का आवरण नहीं ओढ़ते थे, हालांकि पूरे गम्भीर होते थे।

जब भी मेरे पति पकोड़े खाने बैठते- वे भैया को याद करते थे। अब

वे भी नहीं रहे। मेरे जीवन में अब पकोड़े बनाना व खाना एक याद करने की ही बात रह गयी।

पकौड़े के साथ पूड़ी सेंकने का भी प्रसंग बड़ा रोचक है। सीहोर में मेरे पति की पोस्टिंग 1968 से 1974 तक रही। हम रींवा से स्थानांतरित होकर सीहोर आए थे। स्वामी जी से पत्र व्यवहार होते रहता था। वे सदा पोस्टकार्ड में ही छोटा सा पत्र लिखते थे सुंदर मोती जैसी लिखावट होती थी। अंत मैं 'तुम्हारा भैया'-

रींवा में जब आये तो पत्र लिखकर आए। पर सीहोर में 4 बार आए, पर बिना सूचना के आए। भोपाल समीप था। वे जब भी भोपाल आते, समय निकालकर दोपहर या शाम को एक घण्टे के लिए आ जाते थे। उन्हें पता था-मैं कालेज से 12 बजे तक घर आती हूँ। 1970 सितम्बर से मैं भी कालेज में व्यख्याता हो गयी थी-लोक सेवा आयोग से चयनित होकर।

यहां पहली बार 1969 में आए। तब मेरा पी.एच. डी. शोधकार्य पूर्णता की ओर था। उनकी भेंट मेरे गाईड डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र से हुई थी।

उसी सन्दर्भ में वे बात करते रहे। उस दिन उन्होंने भोजन किया तो पूड़ी बनाई। वे सेंकने लगे।

पर पुरानी शिकायत करने लगे-तो इस मकान में भी रींवा के मकान की तरह एकदम छोटा बाथरूम, ऊपर से लगा हुआ किचन। किराया के लिए कितना शोषण होता है। ''पर सत्या, भले ही किराया का मकान हो, अपना समझकर रहो, जब तक रहो। वैसे संसार में कोई स्थायी रूप से नहीं रहने आता । पर जब तक रहो अपना भाव बनाकर रखो।'' - यह उनकी सीख थी ।

इतने में मेरे पति भी आ गए भैया का पूड़ी तलना हो गया। इनको बोले- ''क्या नाम लेगा मनहर। मेरे हाथ की सिंकी गर्म पूड़ी खा।'' कह कर कुर्सी पर बैठ गए। मैंने खाना परस दिया। ईश्वर को अर्पण कर, वे खाने लगे।

पूरी थीसिस उलट पलट देखने लगे। 'धनी धर्मदास' को 'सन्त धर्मदास' लिखने की सलाह उन्होंने ही दी। बहुत प्रसन्न थे। मुझे थीसिस जल्दी जमा करने का आशीष देकर वे चले गए। पर जाते जाते मेरे नन्हे बेटे विवेक को प्यार करना नहीं भूलते।

ooo

चौदह

आश्रम से मेरे घर संसार तक -1

यह मेरे जीवन की कथा है- जिसका सूत्र स्वामी आत्मानन्द के हाथ में था।

1962 से मेरा आश्रम जाना, व विवेकानन्द भावधारा से जुड़ाव हो चुका था। एक वर्ष मैं बाहर रही छतरपुर में, पुनः रायपुर आने पर प्रतिदिन शाम को आश्रम जाना, वाचनालय में पत्रिकाएं पढ़ना, प्रार्थना सभा में सम्मिलित होना व स्वामीजी से थोड़ी देर तक बातचीत करना- मेरी दिनचर्या का अंग बन गया। 1963 में सभी भवन करीब-करीब बन कर तैयार हो गए थे ।

मैं दिसम्बर 1963 में ही रायपुर आ गयी। पिताजी पुनः पी.जी.बी. टी. कॉलेज में स्थानांतरित होकर आ गए। इस स्थानांतरण से मेरी पढ़ाई प्रभावित हुई। एम.ए. संस्कृत की तैयारी कर रही थी। स्वामी जी से समस्या बतलाई- ''भैया क्या करूं ? प्रायवेट रूप से संस्कृत की परीक्षा नहीं दे पाऊंगी। हिंदी साहित्य में परीक्षा दे दूं?''

भैया ने सहमति व्यक्त करते हुए कहा- ''अवश्य । वैसे तुम संस्कृत में करती, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती। पर, तुम्हारी समस्या बड़ी है। कम समय में हिंदी साहित्य में ही कर लो। तुम तो वैसे भी बी.ए. में हिंदी साहित्य ली थी। फिर तुम्हें रूचि भी है। तुम्हारी कविताएं, प्रकाशित हो रही हैं। हिंदी साहित्य में करोगी तो, तुम्हारा लेखन भी समृद्ध होगा! वैसे आश्रम की लाइब्रेरी की तुम नियमित सदस्यता ले लो। यहां पत्र पत्रिकाएं भी बहुत आती हैं। घर पास है। प्रतिदिन आ सकती हो। वैसे भी तुम आती ही हो। ठाकुरजी की कृपा बनी रहेगी सत्या!''

सुनकर मैं आश्वस्त हो गयी। बहुत हल्का लगा। मैंने परीक्षा दे दी। तब सागर विश्वविद्यालय था। 1964-65 में रायपुर विश्वविद्यालय ने प्रथम

बार परीक्षा आयोजित की। मैने विज्ञान महाविद्यालय में एमए, हिंदी साहित्य में प्रवेश लिया। एम. ए. की कक्षाएं विज्ञान महाविद्यालय में लगने लगी ।

जुलाई से क्लास शुरू हो गयी। डॉ. दीक्षित, डॉ. जैन तो पढ़ा ही रहे थे। कभी-कभी कुलपति डॉ. बाबूराम सक्सेना भी राउंड लगाने आ जाते और भाषाविज्ञान की क्लास ले लेते थे। तीसरी बार वे आये, तो साथ में एक नए प्राध्यापक थे। क्लास में हम केवल चार विद्यार्थी थे। दो लड़के व दो लड़कियां।

उन्होंने परिचय कराया- ''ये हैं आपके नए सर। अभी-अभी स्थानांतरित होकर आए हैं। डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा''

कुलपति बाहर चले गए। डॉ. नरेन्द्रदेव क्लास में। हम सब बैठ गए। मैंने पहली बार नरेंद्र भैया को देखा। पारिवारिक सम्बन्ध होने के बावजूद मेरा सम्बध केवल दीदी व बहन लक्ष्मी के साथ ही रहा। कभी अन्य सदस्य से मुलाकात नहीं हुई। घर पर शाम को ही आश्रम जाकर मैंने भैया को बताया कि नरेंद्र भैया ने भी क्लास ली। भैया हंसकर बोले ''अच्छा?''

''क्या पेपर पढ़ाया?''

मैंने कहा-''गद्य साहित्य''।

''अरे वो तो भाषा विज्ञान वाला है?''

''वे डॉ. जैन पहले से ले रहे हैं।''

''अच्छा अच्छा।''

इतने में ही नरेंद्र भाई आ गए। भैया पुलकित स्वर में बोले-''देख नरेंद ये सत्या है। बता रही है तुमने क्लास ली। अरे ये डिबेटर है, ध्यान रखना।''

और सचमुच '14 सितम्बर हिंदी दिवस' के दिन महाविद्यालय में कार्यक्रम संचालित करते हुए उन्होंने मेरा नाम पुकारा वक्तव्य देने। दो सेकेंड के लिए हतप्रभ हो गयी, फिर धीरे से मंच पर गयी और 5 मिनट में अपना वक्तव्य दिया।

शाम को भैया के साथ पुस्तकालय में बैठे हुए मैने शिकायत के स्वर में कहा– ''नरेंद्र भैया ने बिना पूर्व सूचना के मुझे बोलने के लिए नाम पुकारा, अच्छी बात नहीं।'' नरेंद्र भाई के आते ही हंसते हुए बोले– ''तुम सत्या को कैसे मुश्किल में डाल दिए आज? भाषण देने के लिए बताना तो था इसे?''

नरेंद्र भाई ने हंसते हंसते कहा– ''आप ही ने तो कहा था जी ये डिबेटर है? डिबेटर को तो कभी भी चुनौती स्वीकार करना चाहिए?''

''ठीक है। पर आगे से ऐसी गलती मत करना, समझे?''

ooo

पन्द्रह

आश्रम से मेरे घर संसार तक - 2

(2 अक्टूबर की शाम प्रार्थना सभा के बाद)

रोज की तरह हम उनके कक्ष में वार्तालाप कर रहे थे। किसी न किसी विषय पर मैं अवश्य संवाद करती थी। उस दिन हम गांधी जी पर बात कर रहे थे। उनकी बातें मेरे लिए बहुत ज्ञानवर्धक होती थी। धीरे-धीरे विवेकानन्द साहित्य पढ़ते-पढ़ते व रोज उनके सत्संग से कब मन में वैराग्य भाव जागा, जान नहीं पाई।

मैंने यूंही पूछा-''क्या नारियां संन्यास नहीं ले सकतीं भैया? जैसे मैं?''

भैया बहुत गम्भीर हो गए।

''मत सोचो सत्या। गृहस्थ जीवन बिताते हुए भी अच्छे जीवन साथी के साथ सारे सद्कार्य कर सकती हो।''

भैया ने कोई कारण नहीं बताया। मुझे अनुमति भी नहीं दी। स्पष्ट रूप से मना भी नहीं किया।

घर जाकर भी नींद नहीं पड़ी। सोचती रही, पर हल नहीं निकला।

मेरे पिता बचपन से ही मुझे लेकर चिंतित रहा करते थे। हमेशा मां से कहत- ''यह सामान्य क्यों नहीं है? हमेशा संतों की कथाएं क्यों पढ़ती है?

मुझे डर है संन्यासिनी न हो जाये?'' निदान के लिए मुझे मेला घुमाते, त्योहारों में घुमाते, फिल्म देखने भेजते- मां व पड़ोसिनों के साथ। इसी प्रसंग में याद आ रहा है- संतोष भैया जगदलपुर में मुझे उंगली पकड़कर दशहरा दिखाने ले जाते थे। ''तुपकी'' खरीदकर चलाते थे। तब मैं बहुत छोटी थी।

दो दिन बाद शाम को आश्रम में एक नए व्यक्ति से मुलाकात हुई। नरेंद्र भैया भी थे।

एक नवजवान खादी का कुर्ता पजामा पहने सुगढ़ गम्भीर, बैठा हुआ था।

भैया ने परिचय कराया– ''सत्या इससे मिलो, ये है मनहर आडिल। दिल्ली से कृषि में एम एस.सी. है। फिलहाल वर्धा के विनोबाजी के आश्रम में 8 माह रहने के बाद यहां कृषि महाविद्यालय में व्याख्याता के रूप में पदस्थ है। पिछले महीने हम दिल्ली से एक ही ट्रेन में साथ साथ बैठकर आये। गांधीवादी हैं।''

फिर मेरा परिचय देते हुए बोले– ''ये है सत्यभामा वर्मा हिंदी में एम.ए. फाइनल में है। नरेंद्र भी उसी कालेज में पढ़ा रहा है। ये नरेंद्र मेरा छोटा भाई!''

और फिर तीनों का परिचय कराकर वे उन्मुक्त होकर हंसने लगे।

वही, चिर परिचित हंसी।

यह परिचय प्रगाढ़ता में बदलती गयी। सप्ताह में एक बार तो हो ही जाती थी मुलाकात। बातें गांधी व विवेकानन्द पर होती थी। मैं, वे और नरेंद्र भैया पुस्तकालय में बैठते, पत्रिकाएं देखते, किताब इशू कराते। कुछ दिनों बाद भैया ने गम्भीरता से पूछा–''क्या तुम मनहर को जीवन साथी बनाना पसन्द करोगी?'' में चौंक गयी। मेरा चेहरा भावशून्य हो गया। कोई उत्तर नहीं दे पाई।

कई दिनों बाद मनहरजी के बड़े भाई मेरे पिताजी के पास आये और अपने भाई की पसन्दगी बताते हुए बोले– ''हम आपके उत्तर की प्रतीक्षा करेंगे।''

एक सप्ताह बाद मनहरजी के पिताजी, अपने बड़े जीजाजी गोकुल प्रसाद टिकरिहा को लेकर घर आये। मैं उसी समय घर से बाहर निकल रही थी–विनोबाजी का प्रवचन सुनने। प्रवचन साईंस– कालेज प्रांगण में चल रहा था। विषय था 'ईशावास्योपनिषद।'

स्वामीजी ने कहा था- 'जाकर सुनो।'

जब मेरे पिताजी ने बताया कि मुझे अध्यात्म में रुचि है- वे आगंतुक अतिथि बहुत प्रसन्न हुए। वे स्वयं भागवत, रामायण, के अध्येता व पंडवानी गायक थे। नाम सूबेदार आडिल। लोग उन्हें भजनहा दाऊ कहते थे। वे दिखने में ही महापंडित की तरह थे ।

पिताजी ने मेरी शादी तय कर दी । अतिथि ने स्वीकृति दे दी। मैंने भैया को बताया, वे बोले- ''तुम अपना निर्णय स्वयं लो। मनहर आचार विचार में स्पष्ट गम्भीर व सच्चा गांधीवादी है।''

''निर्णय तुम्हें स्वयं लेना है सत्या। महाराज व मां शारदा तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करने के लिए हैं ही।''

10 मई 1965 - मेरा विवाह हो गया । ग्राम पन्दर में बारात गई । भैया ने बताया - ''हम संन्यासी शादी में सम्मिलित नहीं होते । शादी की मिठाई भी नहीं खाते ।'' मैं चुप थी । उनके नियम-धरम समझने की कोशिश कर रही थी। मेरा विवाह रायपुर में संपन्न होने वाला था । पर अकस्मात् मेरे बड़े पिताजी की बेटी व काकाजी के बेटे की भी शादी उसी तिथि, में तय हुई, इसलिए संयुक्त परिवार में एक साथ तीन शादियां निपटाने की योजना बनी । विवाह के बाद मैं एक माह तक अपने ससुराल गांव बोड़तरा (भाठापारा) में रही । जब रायपुर आई तो उसी शाम भैया के आशीर्वाद से हमारी झोली भर गई । वे हमें देखकर बहुत प्रसन्न हुए । बोले-''पारिवारिक जीवन जिओ ।''

ooo

सोलह

आश्रम से मेरे घर संसार तक -3

मैं पी.एच.डी, करना चाहती थी।

विषय का चुनाव करने में नरेन्द्र भैया ने मदद की। स्वामी भैया ने उन्हें कहा- ''सत्या से डिस्कस करो,'' हम आश्रम के खुले परिसर में घास पर बैठकर विमर्श करते। कई दिनों के विमर्श के बाद विषय तय हुआ-धनी धर्मदास : व्यक्तित्व व कृतित्व।''

शोध के लिए कई विषयों पर विचार किया मैंने । रायपुर साईंस कॉलेज के प्राचार्य बनकर आए थे - प्रो. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' । प्रसिद्ध कवि भी थे । उनसे मिली मैं महादेवी वर्मा के काव्य पर शोध करने का विषय चुनी । पर वे बोले - ''जीवित साहित्यकारों पर शोध नहीं कर सकते।'' बात खत्म अब निर्देशक की समस्या । मुझे लगा क्यों न नरेन्द्र भैया से बातचीत करूँ ?

भैया बहुत रुचि ले रहे थे। रोज पूछते--तय हुआ?

तय होने पर बोले- ''चलो अब तुम्हारा सत्संग सन्त कबीर व कबीरपंथ से होगा।''

''पर आश्रम आना नहीं छूटेगा। '' मैने धीरे से कहा ।

भैया ठहाका लगाते रहे । फिर बोले -

''मनहर तू तो 'बपुरा' बन जायेगा इसके पीछे। पर, 'बपुरा' बनने का सुख भी तुझे मिल रहा है।'' - भैया का विनोदी स्वभाव अक्सर उभर आता था ।

हम चारों के ठहाके गूंजते रहे।

मैं राजनांदगांव गई । डॉ. बलदेव प्रसाद, प्रसिद्ध मानस विशेषज्ञ से मिली ।

जब डॉ, बलदेवप्रसाद मिश्र मेरे निर्देशक बनने को तैयार हो गए, तो भैया को अपार प्रसन्नता हुई।

जनवरी 1966 में आश्रम में रामायण के पात्रों पर परिसंवाद हुआ। भैया ने मुझे 'कैकेयी' पर बोलने को कहा। विविध रामायणों का अध्ययन, इसी परिसंवाद के लिए किया मैने।

तब तक यानी मई 1965 से अक्टूबर 1965 तक मनहर जी को कृषि महाविद्यालय कैम्पस में क्वार्टर नहीं मिला था । मैं अपने मायके ईदगाहभाठा में ही, आश्रम के समीप रह रही थी । इसलिए प्रतिदिन शाम को आश्रम आती ही थी । वाचनालय में, प्रार्थना सभा में, फिर भैया से वार्तालाप यह नित्य का क्रम था । अक्टूबर के बाद क्वार्टर मिला । फिर हम रविवार को सिटी बस में बैठकर आश्रम व पिताजी के घर आते थे । शाम की बस से वापस चले जाते थे । इसी तरह मैंने व्याख्यान की तैयारी की ।

ooo

सत्रह

आश्रम से मेरे घर संसार तक - 4

रायपुर कृषि महाविद्यालय के कैम्पस में क्वार्टर मिल गया। हम वहाँ रहने चले गए। पी. एच. डी. के पंजीयन में समय लगा । रविशंकर विश्वविद्यालय में शोध पंजीयन के लिए मैं पहली कैंडिडेट थी। समय बीतता गया सितम्बर 1966 मेरे प्रसव का समय आ गया। जब मनहरजी ने उन्हें पुत्र होने की खबर दी, तो वे आल्हादित होकर बोले- ''बोलो विवेक आ गया बधाई।'' मेरे पुत्र का नामकरण हो गया। एक माह बाद में आश्रम गयी। मुझे डॉ. राधाकृष्णन की पुस्तक ''इंडियन फिलॉसॉफी'' चाहिए थी। वे बोले - ''अभी तुम मातृसुख लो सत्या बाद में पढ़ लेना'' मैं नहीं मानी। वे बोले- हिंदी संस्करण नहीं है। अंग्रेजी संस्करण है। मैंने कहा- वही दे दें। वे मेरे नाम से इशू कराकर दे दिए। पर बहुत गम्भीर होकर देखते रहे। मैं 2 माह के बाद लाभांडी से सिटी बस में आश्रम आयी। दो वर्ष से सिटी बस चलने लगी थी रायपुर में। हमारे पास उस समय स्कूटर नहीं था। सिटी बस से ही शहर आना-जाना होता था। ''इंडियन फिलॉसॉफी'' लेकर आई। ये पूछे, ''इतनी जल्दी पढ़ ली?'' ''हिंदुइज्म इज प्रोसेस!'' यह पूरा पैरा समझना है।'' - मैंने कहा ।

वे गम्भीर हो गए। उन्होंने पूरा समझाया।

दर्शन शास्त्र मेरा विषय नहीं था, पर रुचि थी, क्योंकि संस्कृत के ग्रन्थ वेद, उपनिषद आदि का भी अध्ययन किया था मैंने। पर भैया का ज्ञान अपार था। मैंने तो स्थूल अध्ययन किया था।

उस दिन एक घण्टे तक उनका विवेचन चला। फिर अचानक बोले-''अरे तुम तो बच्चे को छोड़कर आई हो? चलो जाओ। किसी और दिन बैठेंगे। तुम मां बन गयी हो। बच्चे का ध्यान पहले रखो। उठो जाओ सत्या''।

स्वर में आदेश था।

मैं ईदगाहभाठा में मां के पास विवेक को छोड़कर आई थी, इसलिए निश्चिंत थीं। पर भैया का आदेश ? उन्हें मेरी कितनी चिंता थी ?

ओहा! मेरे घर संसार का कितना ध्यान रहता है भैया को।

पर सत्य यह है कि केवल मेरा ही नहीं, हर किसी का इसी तरह ख्याल रखते थे।

संन्यासी होकर भी उनके हृदय में ममता का भाव हर किसी के लिए रहता था।

ooo

अठारह

आश्रम से मेरे घर संसार तक- 5

मनहरजी का स्थानांतरण रींवा हो गया। मैं रायपुर में ही पिताजी के घर थी दो माह तक । दिसम्बर में नागपुर गयी अखिल भारतीय कूर्मि क्षत्रिय महासभा के महाधिवेशन में। वहा अशोक मेहता केंद्रीय योजना मंत्री मुख्य अतिथि थे, पर स्वामी आत्मानन्दजी के आशीर्वचन से सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। मंच पर मैं अकेली नारी थी। सम्मेलन में नारियों की उपस्थिति अत्यल्प थी। स्वामीजी का उदघाटन भाषण नारी शिक्षा व नारी शक्ति पर ही केंद्रित हुआ। यानी ''समाज व राष्ट्र का विकास स्त्री शिक्षा से ही सम्भव है।'' - यह सम्बोधन का सार था।

रात्रि भोज सन्त तुकडोजी महाराज के निवास पर खुले प्रांगण में जमीन में बैठकर किया गया। भोजन के अंत में वे हमें अपने पूजा कक्ष में ले गए। विठ्ठलजी के सभी देवरूपों की ढेरों मूर्तियां विद्यमान थीं। पहले स्वामी जी ने, फिर हम सबने प्रणाम किया। मेरे साथ मनहरजी भी थे। तुकडोजी महाराज ने बेटे को गोद में लेकर आशीष दिया, फिर स्वामी जी से बोले- ''ये सत्यभामा बेटी को हमारे नागपुर में चुनाव लड़ने दो। हम गोद ले लेते हैं। इसके भाषण ने मुझे प्रभावित किया। यहां ऐसी नारी की जरूरत है। स्वामी जी हाथ जोड़कर विनम्र भाव से बोले-''नहीं नहीं महाराज, यह छोटे बच्चे की माता है। इसे अभी माता की भूमिका में ही रहने दो।''

कलकत्ता के बाबू लक्ष्मण चन्द्र सिंह (प्रसिद्ध समाजसेवी) ने कहा - ''महराज यदि सत्यभामा राजनीति में आए, तो हमारे लिए गौरव की बात होगी। पर स्वामी जी अनुमति नहीं दे रहे ।'' मैंने तुरन्त भैया से सहमति व्यक्त की- ''महाराज मुझे अभी राजनीति में नहीं आना है, क्षमा चाहती हूं।''

सन्त टुकड़ो जी महाराज भैया की आखों में आँखें डालकर भीगे

नयनों से बोले- ''कितना सोचते हैं, आप मातृत्व की रक्षा के लिए।''

और उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरा। मनहरजी के सिर पर हाथ फेरा।

इस तरह भैया मेरे रक्षा कवच बन गए, मेरे घर संसार में प्रवेश करते हुए।

जनवरी में मैं रींवा चली गयी, जाने से पूर्व 'विवेक ज्योति' का विमोचन हुआ ।

''विवेक ज्योति'' त्रैमासिक पत्रिका के प्रकाशन का, छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द भावधारा को प्रवाहित, प्रचारित करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

नरेद्र भेया, स्वामीजी को इस कार्य में पूरा सहयोग दे रहे थे। बाद में यह पत्रिका मासिक रूप में प्रकाशित होने लगी।

अभी 4 वर्ष पूर्व मैंने इस पत्रिका के संकलन को 50-50 बंडल बनाकर, कई गांवों में भेजा, अंत में कुछ प्रतिया रायपुर के कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता विश्वविद्यालय में भेजी। प्रारंभ से लेकर अब तक की 'विवेक ज्योति' की प्रतियाँ रखी थीं ।

वर्षों से एकत्रित 'विवेक ज्योति' की प्रतियां मैंने वितरित कर दी- ताकि लोग आश्रम की पुरानी गतिविधियों को जानें व ज्ञान लाभ हो।

रींवा में भैया 4 दिनों के लिए आये, ये वर्णन मैंने पहले खेल प्रसंग में किया है। वहीं हम गिरीश द्विवेदी यानी स्वामी करानन्द जी से पहली बार मिले थे।

उन्नीस

आश्रम से मेरे घर संसार तक- 6
(सीहोर की स्मृतियां)

अप्रैल 1969 में रविवार का दिन । मैं उस समय पी.एच.डी. के अध्ययन में व्यस्त थी । प्राय: सभी कबीरपंथी मठों का भ्रमण कर चुकी थी। लेखन अंतिम रूप ले रहा था । दोपहर को विवेक को सुलाकर ही लिखने पढ़ने का का कार्य करती थी । दो ही कमरे थे। अंदर छोटा आंगन और किचन । अचानक बाहर के दरवाजे पर खटखटाने की आवाज आई - मनहर जी सोए थे, उठकर दरवाजा खोले । यह क्या? भैया ने ठहाका लगाया - 'हा हा हा हा ' और इनका भी ठहाका ।''अरे भैया'' । स्वामी जी बाहर ही जूता उतारकर अंदर आए। हम दोनों ने प्रणाम किया। 'घर मिल गया?' भैया बोले - '' तुम दोनों को ढूंढना कठिन काम नहीं है।'' तुमने लिखा था न सेठ नारायण दास कम्पाउण्ड ? बस, आ गया। यहां पूछते ही लोगों ने घर बता दिया ।''

मेरी फाइलें देखकर बोले - ''लगता है युद्धस्तर पर शोध चल रहा है ? ''

फिर पूछे - ''कौन-कौन से मठ गई थी?''

मैनें बताया - ''जगन्नाथपुरी, कोटा, यू.पी. व बिहार भी गई थी । कलकत्ता की 'नेशनल लाइब्रेरी' भी गई थी - एक माह रही।'' वे रूचि ले -लेकर पूछते रहे - मैं बताती रही । उन्हें बहुत आनन्द आ रहा था । इतने में मनहर जी ने पूछ लिया - '' भैया क्या खाओगे ?'' वे बोले - ''बस चाय पीकर चला जाऊँगा । भोपाल आया था परसों से, अभी खाली था, सोचा, तुम लोगों से मिल लूं. बस आ गया एक घण्टे में । बैरागढ़ क्रॉस किया और सीहोर ? '' मैंने कहा - ''अरे भजिया तो खाएंगे चाय के

साथ?'' तो वे प्रसन्न होकर बोले – ''ठीक है, ला मैं प्याज काटता हूँ।'' ''अरे नहीं भैया आज नहीं । मैं जल्दी बनाती हूँ। '' मैं अंदर गई आंगन में प्जाय काटी, आलू को चिप्स की तरह काटी, बेसन घोली, स्टोव्ह जलाई । स्टोव्ह की आवाज सुनकर वे आंगन में आ गए । बोले – ''यह घर भी रींवा के घर की तरह छोटा है, पर आंगन है,तो अच्छा लग रहा है । हवा आती है।''

वे किचन को झाँकते हुए बोले – ''एकदम छोटा है। बस आंगन में ही तलें भजिया ।'' मेरी मुसीबत शुरु – ''भैया आप कैसे बैठोगे यहाँ ? चलिए कमरे में । मैं तलकर लाती हूँ । '' मैंने मनहरजी को पुकारा – ''भैया को बुलाओ।'' ये दौड़कर आए. घबराकर बोले – ''क्या हो गया?'' ''चल न भैया । तोला रांधे पसाए के अब्बड़ साध लागथे । तंय बावर्ची बन गेय रहिते । काबर साधु संत बन गेय ? तोला खाय से मतलब ? चल कुरिया म?''

भैया ठहाका लगाते बोले – ''मोला चमकाथस रे । तहूं ल चमका दहूं त ? चल रे चल । कुर्सी मं । ओ दे विवेक जागगे । '' रोने की आवाज सुनते ही बोले ।

दोनों कमरे में गए। 15–20 मिनट में भजिया लेकर मैं कमरे में गई तो देखती हूँ – भैया विवेक को गोद में लेकर बैठे हैं। पुचकार कर बाते कर रहे हैं । मनहरजी ने विवेक को अपने गोद में लिया और मैंने भैया को भजिया की प्लेट दी । हमारे घर केन की कुर्सियाँ और एक टेबल थी । किनारे तखत डला था। भैया तखत में ही पालथी मारकर बैठते थे । फिर चाय भी ले आई । ये मगन होकर भजिया खाते रहे । प्रशंसा करना तो मानों भैया का ''गुणधर्म'' था । चाय पीकर ये चलने को उठे। सीहोर में यह उनका पहला आगमन था ।

1971 में दो बार आए। 1973 में जब आए, उसका वर्णन मैं पूर्व में ही कर चुकी हूँ । यानी भोपाल आने पर, जब भी समय मिलता , वे सीहोर अवश्य आते ।

ooo

बीस

आश्रम से मेरे घर संसार तक- 7
(रायपुर)

हम 4 जून 1975 को सीहोर से स्थानांतरित होकर रायपुर आ गए । मैं रायपुर विज्ञान महाविद्यालय, हिन्दी विभाग में ज्वाईन की । उस समय वहाँ कला संकाय की स्नातकोत्तर कक्षाएं चल रही थी । डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा विभागाध्यक्ष थे । हम स्टॉफ रूम में बैठकर बहुत गप्प लगाते - क्योंकि कक्षाएं बन्द थीं । 21 जून को आपातकाल लगा । स्नातकोत्तर कक्षाएं बन्द कर दी गईं । अब हम केवल विज्ञान महाविद्यालय में हिन्दी भाषा की ही कक्षाएं लेते । जब एम. ए. की कक्षाएं बन्द हुई. तो डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा का स्थानान्तरण महिला महाविद्यालय में हो गया । हम चौबे कालोनी में महाराष्ट्र मण्डल के सामने के मकान में किराए पर रहने लगे । मेहमान बहुत आते थे। इसलिए आश्रम जाने का समय नहीं मिलता था। दो महिनों के बाद हम स्वामी भैया से मिलने आश्रम गए । वे हमें देखते ही बहुत प्रसन्न हुए । बस आपातकाल पर चर्चा होती रही । भैया ने बच्चों के बारे में पूछा - उन्हें विवेक और निवेदिता का नाम याद रहा क्योंकि ये नाम उन्होंने ही रखे थे। मनीष के बारे में उन्हें अब जानकारी हुई । मनीष गोद में था। उसे अपने गोद में लेकर बोले - ''यह भी आ गया है ? बहुत पुचकारे । नाम पूछे मैंने बताया - मनीष। '' इतने में नरेन्द्र भैया आ गए । पुराने दिन फिर लौट आए - ऐसा लगा । स्वामी भैया में कोई परिवर्तन नहीं । वही, प्रसन्न, परिहास वाली मुद्रा, विनोदी स्वभाव । गंभीर साधक होकर भी, हर किसी के साथ ऐसा व्यवहार करते, जैसे अपने हों । यह समतावादी स्वभाव अनिर्वचनीय सुख प्रदान करता, साथ ही उन्हें लोकप्रिय भी बनाता ।

1962,65 व 71 के भारत-चीन व भारत-पाक युद्ध के समय वे

युद्धरत सैनिकों के लिए वस्त्र, गरम कपड़े व राशि एकत्रित करते – इस संकल्प के साथ कि दिन भर संग्रहण के बाद ही शाम को भोजन करेंगे । और वे अपना संकल्प पूरा करते । वे आव्हान करते और लोग अपना स्वर्ण पदक तक दान करे देते । स्वर्ण पदक दान करने वालों में एक प्रमुख नाम स्मरण आ रहा – स्व. प्रो रणवीर शास्त्री– जो दुर्गा महाविद्यालय के प्राचार्य व आश्रम के परम भक्त थे । ऐसे अवसरों पर मैं जब रायपुर आती तो देखती कि मेरी मां, बहन, पिताजी गरम कपड़ों का बंडल ले जाकर आश्रम में दान करते । ऐसा हमने भी किया । भजन, पूजन व भोजन से अधिक ईश्वरीय भक्ति यही थी – उस समय ।''मानव सेवा'' ही ईश्वर की सेवा है ।'' यही सिद्धांत, आदर्श स्वामी भैया के जुनून में था ।

आपातकाल बड़ा कठिन काल था । उस कठिन समय में आश्रम का कार्य पूरी साधना के साथ चल रहा था ।

ooo

इक्कीस

आश्रम से मेरे घर संसार तक - 8

रायपुर आने के बाद अब विशिष्ट अवसरों पर ही मेरा आश्रम जाना होता था । हम अक्टूबर दशहरा के समय शंकर नगर के हाऊसिंग बोर्ड से क्रय किए गए घर में शिफ्ट हो गए । विज्ञान महाविद्यालय बहुत दूर पड़ता सुबह नौ बजे घर से निकलना, दो बच्चों को ईदगाहभाठा (आश्रम के निकट) मां के घर पहुँचाकर कॉलेज जाना, फिर वापसी में उन्हें लेते शंकरनगर अपने घर वापस जाना । शाम छः बजे घर पहुँचना । रविवार को ही आश्रम जाती, तो स्वामी भैया ने मेरी समस्या से अवगत होकर कहा - अब विशेष समय में आया करो, जब मैं बुलाऊँ । कैसा होता उनका बुलावा? वे राजा भैया को भेजते यह कहने कि ''मां शारदा जयन्ती'' पर वक्तव्य देना है ।''कृष्ण जन्माष्टमी पर व्क्तव्य देना है। '' ''परमहंस'' पर बोलना है । विवेकानन्द जयन्ती समारोह में वादविवाद प्रतियोगिता में कुछ वर्षों तक निर्णायक, फिर बाद में अध्यक्षता के लिए बुलावा । इस तरह मेरा आश्रम जाना होता रहा । हमने सोचा - एक बार भैया व साथ में सभी को भोजन पर बुलाना है । नये घर की पूजा बहुत हड़बड़ी में अचानक की गई थी । सो भैया का आशीर्वाद नहीं मिल पाया था । इस तरह स्वामी भैया, देवेन्द्र भैया, राजा भैया, सन्तोष भैया, नरेन्द्र भैया व गिरीश भाई इन छः लोगों को हमने भोजन पर निमंत्रित किया ।

सभी आए । वह दिन बहुत आनन्द देने वाला दिन था । छः सीट वाले टेबल में सभी छः बैठे । टेबल पर रखे सलाद पर उनका ध्यान गया । ध्यान से देखकर बोले - ''सत्या, एमा नमक तो छिड़क दे, खीरा ह सुखावथे ।'' राजा भैया तुरंत बोले - ''दीदी मंय छिड़क देथंव नमक ।'' फिर क्या था भैया बोले - ''बइठ राजा, मंय बड़े अंव, मंय ह नमक छिड़कहुँ ।'' इतना कहना था कि भैया स्वयं ठहाका लगाए- साथ में सभी लोगों ने ठहाका लगाया । भैया व नरेन्द्र भैया की आवाज सबसे ऊँची थी । देवेन्द्र भैया व गिरीश भाई केवल हँसे । संतोष भैया कम ठहाका लगाए ।

इस तरह विनोदमय वातावरण में भोजन हुआ । किचन से टेबल तक बार-बार दौड़ते देख स्वामी भैया ने कहा - ''सत्या एकाध झन ल हेल्प करेबर बला लेते ।'' संतोष भैया ने टोकते हुए कहा - ''भैया ये ला ननपन के अकेल्लाच काम करे के आदत हे ।''

''तंय कइसे जानथस संतोष एखर ननपन ला।''

''वाह । ए नानकुन रिहिस, त एला खांध मं बईठार के दशहरा देखाय बर ले जंव सिरासार - जगदलपुर मं ।''

''जगदलपुर मं ?''

''हां मंय ऊंहे बस्तर हाईस्कूल मं पढ़त रेहेंव, त वर्मा सर ह ऊंहे प्राचार्य रिहिसे ।''

''अच्छा, अब तो पी.जी. बी.टी. कालेज में इंहे से रिटायर होईस । संझा आथे न आश्रम म । डिबेट चलथे त जजमेंट पर राजा बलाके लाथे न''

''हां संझा तो आश्रम लाइब्रेरी मं बईठथे सर ह । ''

''तभे लइकापन के सुरता करथस बाबू?'' और पुनः हंसने लगे भैया ।

फिर बोले परिहास में - ''सत्या, संतोष ह सिरतोन कहाथे न ? तोला कंधा मं बईठार के दशहरा देखाये बर ले गय ? '' अब तो मंय उनके परिहास में इतनी संकुचित हो गई कि कुछ बोल ही नहीं पा रही थी । मनहर जी को बड़ा आनन्द आ रहा था ।

वह दिन पूर्ण रूप से विनोद, परिहास व आनन्द में ऐसे बीता कि कई दिनों तक मैं आनन्द में डूबी रही । कॉलेज जाती, तो भी प्रफुल्लित, घर में रहती, तो भी प्रफुल्लित । एक संन्यासी का स्वभाव इतना सरल और विनोदपूर्ण होता होगा यह कल्पना से परे है ।

आश्रम से मेरे घर आंगन तक उनका शुद्ध सरल परिहास गूँजता रहता था ।

ooo

बाईस

आश्रम से मेरे घर संसार तक- 9

आपातकाल बीत चुका था । स्थितियां सामान्य हो रही थी । अकस्मात सितंबर 1989 को नरेन्द्र भैया के निधन का समाचार आँधी की तरह पूरे शहर में फैल गया । कोई बीमारी-हारी तो नहीं थी - अकस्मात कैसे हृदयाघात हो गया ? निश्चित रूप से भैया का दांया हाथ मानों अक्षम हो गया । पर भीतर के आघात को, मुख पर न लाने का प्रयास करते रहे । उन्होंने बहुत निस्पृह होते हुए भी घर परिवार के बड़े होने के दायित्व का मानों निर्वहन किया । मैं कॉलेज से लौटते हुए, बैजनाथपारा के निवास में थोड़ी देर तारा से मिलने अवश्य जाती । स्वामी भैया उसे छोटी बहन या पुत्री की भाँति ढाढ़स बँधाते, पास में बैठे रहते । मैं चकित थी । कितनी भूमिकाएं निभाते हैं भैया । एक दिन मैं बैठी ही थी कि किसी ने आकर भैया से कहा - ''उफरा गांव से कोई भारतभूषण परगनिहा नाम के मिलने आए हैं ।'' भैया ने मुझसे पूछा - ''ये तारा के रिश्तेदार हैं क्या सत्या ?''

मैंने कहा - ''हां भैया तारा के मायके से आए हैं, चाचा हैं ।''

भैया ने तुरंत अंदर बुलवाया । तारा का रोदन बढ़ने लगा, भैया समझा-समझा कर चुप कराने लगे । भारतभूषण जी आए । भैया को देखकर हाथ जोड़े प्रणाम मुद्रा में । भैया ने उन्हें बैठने को कहा । मैं उठ गई, भारतभूषण जी बैठ गए ।

यह प्रसंग इसलिए बताया मैंने कि संन्यास धर्म के साथ, गृहस्थों की औपचारिकता को निभाने का निष्काम काम कर रहे थे । मुझे राजा जनक स्मरण आ रहे थे । वे ''विदेहराज'' कहलाते थे । सारा गृहस्थ धर्म निभाते हुए भी, वे गृहस्थ नहीं थे । निस्पृह अभिनय कर रहे थे । आश्रम से घर

संसार तक, अभिनय करने पहुँचे थे जिस तरह अभिनेता रंगमंच पर अभिनय में डूब जाता है, पर रंगमंच से उतरकर, अभिनेता वाली भूमिका से अलग होकर अपने असली रूप में आ जाता है । इसी तरह स्वामी जी मानों रंगमंच पर बैठे हुए, परिवार के बड़े सदस्य की जिम्मेदार की भूमिका निभा रहे थे ।

दसवें दिन घर के तिमंजिले छत पर श्रद्धांजली सभा में भजन के साथ कुछ लोगों का वक्तव्य भी चल रहा था । भैया ने मुझसे भी कहा – ''2 मिनट बोल''। संस्मरण सुनाना पड़ा । बोलने की स्थिति में न होते हुए भी भैया का कहना मानना पड़ा । ''

थोड़ा चिन्तन करें – घर का सबसे बड़ा सदस्य संन्यासी हो गया, तोघर चरमरा जाता है । स्वामी जी व बाबूजी दोनों की पीड़ा को बतलाने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है ।

घर छोड़कर आश्रम की ओर जाना, फिर आश्रम से घर की मुड़ना, मुड़ कर देखना भर, पुनः आश्रम में चले जाना सदा के लिए । यह कहानी जीवन के मोह को त्यागने की है, कर्म को त्यागने की नहीं । यह संन्यासी कर्मवीर की कहानी है।

बाद में एक दिन राजा भैया को लेकर मेरे घर आए । पूछने लगे अंतिम बार, नरेन्द्र से तुम्हारी मुलाकात कब हुई थी ? तुम बता सकती हो सत्या, कुछ समस्या थी उसकी ? कोई परेशानी थी? ''मेरा उत्तर ''नहीं'' में था । मैंने बताया कि 2 माह से मेरी मुलाकात नहीं हुई थी । उस दिन पहली बार ऐसा हुआ कि भैया चाय भी नहीं पीए । केवल एक गिलास पानी पीकर चले गए । नरेन्द्र भैया का जाना गहरा आघात था ।

ये आश्रम से मेरे घर संसार तक आते और निस्पृह भाव से चले गए।

ooo

तेईस

आश्रम से मेरे घर संसार तक- 10

शीतकाल आ गया था । मन हुआ भैया के लिए एक स्वेटर बना दूं । भैया से मैंने ईच्छा जाहिर की । भैया पहले तो ठहाका लगाए, फिर बोले - स्वेटर का रंग गेरुआ यानी संन्यासी वाला रंग हो तभी चलेगा । मैं उनका नाप लेना चाह रही थी । मैंने 'टेप' मनहर जी को पकड़ा दिया । पहले तो भैया बोले - ''तुम पहाड़ का नाप ले रही हो । टेप छोटा पड़ेगा ।'' मनहरजी बोले - ''मैं नाप लूंगा । खेत नाप सकता हूँ, तो आपको भी नाप लूंगा ।''

अब लंबाई, चौड़ाई, हाथ की लम्बाई, गर्दन का गोल घेरा, कंधा सब नापना हो गया । मैं डायरी में नोट कर ली । भैया बोले - ''मैं रूस जाने वाला हूँ । यदि स्वेटर बन गया तो तुम्हारा बनाया स्वेटर ही पहन कर रूस जाऊँगा ।'' मैंने कहा - ''कोशिश करती हूँ भैया ।''

मेरे साथ मेरी छोटी बहन सुधा भी स्वेटर बुनने लगी । हम दोनों बहनें मिलकर जल्दी-जल्दी 15 दिन में स्वेटर तैयार कर दीं । कॉलर वाला, पूरे हाथ का स्वेटर, सामने से खुला । अब समस्या सामने चेन लगाकर बन्द करना था । रायपुर के सभी ऊन व धागों की दुकान में चेन खोजते रहे, पर उतना लम्बा चेन नहीं मिला । मैं भैया को बतलाने गई कि चेन नहीं मिल रहा इतना लंबा । तो फिर ठहाका लगाए, बोले - ''मैं तो पहले ही बोला था तुम्हें कि, पहाड़ के नाप का स्वेटर बनाना मुश्किल है।'' फिर रूककर स्वयं ही बोले - ''रुक सत्या, मुझे कागज में लम्बाई लिखकर दे दे । कल मैं इन्दौर जा रहा हूँ । हफ्ते भर में आ जाऊँगा । वहाँ मिल जाएगा ।'' मैं आश्वस्त हो गई । स्वेटर को पहनकर देखे । खुश हो गए । बस सामने चेन

भर लगाना था । स्वेटर मुझे दे दिए । बोले – ''बहुत अच्छा बना है । तेरा गिफ्ट याद रखूंगा हमेशा । ''

वे इंदौर से वापस आए तो सचमुच उतना ही लंबा चेन ले कर आए। मैंने व सुधा ने मिलकर चेन की सिलाई कर दी और भैया को स्वेटर भेंट कर दी । स्वेटर का गेरुआ रंग धोती के रंग से मेल खा गया । बहुत खुश थे।

वे रूस से जब लौटे, तो हम आश्रम गए उनसे मिलने गए । उन्होंने मुझे हथेली में रखने लायक सिलाई मशीन गिफ्ट की । वह लक्ष्मी के लिए भी लेकर आए थे । बहुत प्रसन्नता से बोले – ''सत्या रूस में तेरा बनाया ही स्वेटर पहना । बहुत गर्म ऊन है । ले खुश होकर तेरे लिए गिफ्ट लाया हूँ।'' मैं बहुत प्रसन्न थी । वह गिफ्ट आज तक मेरे पास है । जब भी मेरी बेटी देखती है, वह भाव विव्हल हो जाती है । सुधा कहती है – ''दीदी, स्वामी भैया के स्वटेर बनाकर मेरा भी जीवन सफल हो गया ।''

पुण्यात्मा के लिए किया गया सेवाकर्म एक धरोहर है । स्मृतियां स्वर्गिक आनन्द देती है । आश्रम से मेरे घर परिवार तक की स्वामी भैया की यात्रा– वह सत्संग है जिससे जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है । अंधेरे से प्रकाश की ओर जाने की राह दिखाती है । प्रत्येक आत्मा को आनंदित करने वाले का ही नाम – 'आत्मानन्द' है। उनके संपर्क में आने वाला हर व्यक्ति आनन्दित होता था । लोगों को आनन्दित करने के लिए ही उन्होंने अवतार लिया था – ऐसा लगता है ।

ooo

चौबीस

आश्रम से मेरे घर संसार तक- 11

वह रोचक दिन कभी भूल नहीं सकती मैं । संभवत: वह अगस्त 1989 का प्रथम सप्ताह था । एक बार स्वामी जी अकेले ही शंकरनगर आए। बाजू में देवदत्त शुक्ल रहते थे - जो आश्रम के ट्रस्टी थे - अभी एक वर्ष पूर्व दिवंगत हुए । किसी विषय पर बातचीत करनी होगा । बलराम गाड़ी ड्राईव कर रहा था । वहाँ से निकल कर मेरे घर आए । जोर से आवाज लगाते - ''सत्या मनहर कहाँ हो तुम लोग ?'' हम अंदर बैठे थे। रविवार का दिन था। स्व. पुरुषोत्तम लाल कौशिक व स्व. रामलाल चन्द्राकर बैठे हुए थे। स्वामी जी आवाज लगाते - लगाते अंदर आ गए ''अरे वाह तुमन दूनों झन बइठे हव?'' खूब ठहाका लगाए । कौशिक जी व रामलाल जी खड़े हो गए हंसते हुए । वे तीनो हँसते रहे । कारण ? मिलने की प्रसन्नता। आत्मीय प्रसन्नता ।''मनहर, तोला तो बिन मांगे मोती मिल जथे रे ।'' फिर ठहाका । यह उन्मुक्त हँसी की आवाज आज भी सूनेपल में गूँजने लगती है। ''त आज के राजनीति के का हालचाल ह भई? ठलहा हो गेय तंय तो ? मनहर, तहुं राजनीति म आ गेय का रे ? इंखर मन संग पीसा जबे?'' फिर ठहाका ।''मोर नारायणपुर मं खेती बाड़ी देखबे, इंखर मन संग झन जाबे।'' फिर खिलखिलाकर हंसे ।

मैं तो प्रणाम करके पानी लाई । अंदर ''भजिया बन रहा था । तलकर निकाली थी । लेकर आई तो वे एकदम खुश । बोले - बस, तोर हाथ के भजिया मिलगे मोला । दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम।''

टमाटर, धनिया, मिर्च की चटनी देखकर प्रसन्न हो गए । बलराम ने धीरे से हंसते हुए कहा - ''दीदी घर भजिया अब्बड़ खाते स्वामी जी ह ।''

''चुप रे । संन्यासी मन ल सब अपन मन से खंवाथें। संन्यासी होय के इही फायदा हे ।'' फिर खिलखिलाहट । सब भजिया खाने लगे और

राजनीति की तत्कालीन स्थिति पर चारों, यानी मनहरजी भी, बातचीत, तर्क वितर्क करते रहे । मैं उनकी बातचीत से बिल्कुल विलग थी ।

मुझे आनन्द आ रहा था । भजिया सर्व करते, फिर चाय सर्व करते मैं सुन-सुन कर आनन्दित हो रही थी ।

तारीख तो स्मरण नहीं, पर वह दिन मेरे लिए जीवन का सबसे आनन्दमय दिन था। स्वामी भैया बार-बार नारायणपुर-नारायणपुर कहते, कुछ बताते । पर मैं जान नहीं पाई, कि क्या बात है ? केवल इतना पता था कि नारायणपुर के लिए कोई प्रोजेक्ट बना रहे हैं । बड़ी योजना है । वे भोपाल जाने की बात कर रहे थे । कौशिक जी से इसी बात पर बड़ी देर तक चर्चा होती रही । पर, पूरा विवरण मुझे ज्ञात नहीं था । केवल आभास था, बस । एक घंटे बैठे, बात करते रहे,चाय पीने के बाद भी ।

जब जाने लगे तो, मुझे आवाज लगाई - ''सत्या, जा रहा हूँ । '' मैं अंदर से आई । उन्हें प्रणाम की । मैंने कहा - ''ऐसे ही अचानक आइए फिर भैया । ''

''पता नहीं, कब आना होगा । तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो दुबली हो गई हो । मनहर, तू ध्यान नहीं रखता सत्या का ? ''

''सर्व समर्थ शक्ति अपना खुद ध्यान रखती है ।'' मैं तो ''बपुरा प्राणी।'' फिर दोनों का ठहाका । कौशिक जी भी खूब जोर से हँसे । हँसते-हँसते भैया गाड़ी में बैठे । बलराम ने गाड़ी स्टार्ट की, और भैया हाथ हिलाते, हँसते-हँसते चले गए ।

इतना विनोद, इतना परिहास, संन्यासी ऐसे भी होते हैं? अंदर से गंभीर वीतरागी, बाहर सबके अपने बन जाते । कुछ भी विकार उनको लिप्त नहीं कर पाता। एक झटके से अपने को सम्पूर्ण विकारों से मुक्त कर लेते । यह निर्लिप्तता व निस्पृहता का उनका अनोखा स्वभाव हमने रींवा में उनके साथ चार दिन रहकर देख लिया था । लगता है भगवद गीता के ज्ञान, कर्म, भक्ति, को उन्होंने पूर्ण रूपेण आत्मसात कर, अपने में उतार लिया था। सारा संसार उनका अपना था- जबकि वे जानते थे कि संसार में लिप्त नहीं होना है । पर लोगों को अपना बनाकर उन्होंने मुग्ध कर लिया था । आश्रम से मेरे घर संसार तक की उनकी यात्रा.... भुलावा नहीं, एक सीख

थी कि सबको अपना समझो। प्रत्येक जीवन में परमात्मा बसते हैं । इसलिए आनन्दमय होने की यात्रा है यह ।

भैया चले गए । मैं नहीं जानती थी कि यह अन्तिम मुलाकात है। इस मुलाकात में इतना आनन्द समा गया था कि वह आनन्द कभी रिक्त नहीं हुआ ।

स्कूल कॉलेज के दिन थे । 28 अगस्त मेरे छोटे बेटे मनीष का जन्म दिन था। बच्चे हर जन्म दिन पर आश्रम जाकर भैया का आशीर्वाद जरूर लेते थे, मन्दिर में परमहंस व मां का दर्शन करते । 26 अगस्त को हम बाजार जाकर नए कपड़े खरीदे। 27 अगस्त रविवार का दिन था । रविवार को मैं आश्रम अवश्य जाती थी । प्रवचन सुनती । थोड़ा सत्संग होता । मन को तृप्ति मिलती । यह क्या? रविवार की शाम ही खबर बिजली की तरह सब जगह पहुँच गई कि स्वामी जी दुर्घटनाग्रस्त हो गए एवं ब्रह्मलीन हो गए ।'' मनीष ने रोते हुए कहा – ''हम जन्मदिन नहीं मना सकते मम्मी ।'' हमारी आँखों के आगे अंधकार छा गया । किसी तरह रात बीती । हम प्रातः 10 बजे आश्रम परिसर में अंतिम दर्शनार्थ गए। तुलसीदल श्रद्धा सुमन अर्पित कर अंतिम प्रणाम किए । मानों एक युग का अंत हो गया ।

धर्म के मार्ग पर चलने वाले संन्यासियों का वह ''मोक्ष'' था । हम जैसे सांसारिक प्राणियों के लिए दुख, वियोग, वेदना व रोदन था ।

श्रद्धांजलि सभा के दिन जब संतोष भैया (स्वामी सत्यरूपानन्दजी) कार्यक्रम का संचालन कर रहे थे, बोल रहे थे ''मृत्यु तो आनन्ददायक है, आत्मा का परमात्मा से मिलन होता है। यह मुक्ति है, मोक्ष है। यह रोदन का क्षण नहीं आनन्द का क्षण होता है।''

आचार्य रणवीर शास्त्री अपने संस्मरण सुनाए अचानक श्रोता समूह में नीचे, प्रथम पंक्ति में बैठी हुई मुझे – संतोष भैया ने देखा । मंच से तुरंत उतरकर मेरे पास आए । बोले – ''सत्या तुम भी दो शब्द बोलोगी ? आओ।'' मैंने 'हाँ' कहा । शास्त्री जी के बोलने के बाद उन्होंने मेरा नाम पुकारा। मैं धीरे से अपने को सम्हालती हुई उठी । भैया के बारे में, जो भी स्मृति रही, बोली और अपने स्थान पर आ गई । आश्रम से मेरे घर संसार तक की यात्रा खत्म हो गई ।

ooo

पच्चीस

स्वामी आत्मानन्द्र-जीवन प्रवाह - जन्म से मोक्ष तक की सीढ़ियां

सन 1929- जन्म, ग्राम बरबन्दा

1934-सेवाग्राम में पिता के साथ गाँधीजी के सम्पर्क में

1940- रायपुर आना पिता के साथ

सेटपाल स्कूल में भर्ती

1942 (9 अगस्त)

भारत छोड़ो आंदोलन

सत्याग्रहियों के साथ पिता धनीराम जेल में

1943- पिता जेल से रिहा,

नौकरी छूटी, फलस्वरूप सत्ती बाजार में पुस्तक दुकान खोली

1945-मेट्रिकुलेशन के बाद नागपुर गए 6 वर्ष रहे

1951- स्वयं को रामकृष्ण मिशन में समर्पित करने का संकल्प व निर्णय लिया,

1951 से 58 तक नागपुर रामकृष्ण आश्रम में रहे, 1951-में गणित में एम.एस. सी. में टॉप करते हुए विज्ञान संकाय में सर्वोच्च अंक प्राप्त किया, केम्ब्रिज विश्विद्यालय की छात्रवृत्ति, प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में सफल होकर भी, मिशन को अपना लक्ष्य बनाया,

1951- विवेकानन्द का यह वाक्य जीवन का मूलमत्र बन गया- ''पुराना धर्म कहता है वह नास्तिक है जो धर्म में विश्वास नहीं करता, पर, नया धर्म कहता है कि नास्तिक वह है जो अपने आप में विश्वास नहीं

करता।''

13-6-51 का पत्र पिता के नाम- ''मानव जीवन का लक्ष्य भगवत प्राप्ति ही है।''

1959- के अंत में रायपुर आये। आश्रम स्थापित करने के उद्देश्य से

बुढ़ापारा में किराए का मकान लिए।

1960- में, अमरकंटक में स्वयं सन्यास लिया। वे ''ब्रह्मचारी तेज चैतन्य'' के नाम से अब तक जाने जा रहे थे। अब वे ''स्वामी आत्मानन्द'' कहलाये।

1962-में, आश्रम, जी.ई.रोड (रायपुर, भिलाई मार्ग), ईदगाहभाठा से लगी जमीन वाला) प्रार्थना स्थल, भोजनालय, वाचनालय, चिकित्सालय, गौशाला आदि का निर्माण

17 जनवरी 1963-

''विवेक ज्योति''- त्रैमासिक पत्रिका का विमोचन, पत्रिका का नामकरण डॉ. नरेन्द्रदेव वर्मा ने किया।

प्रतिवर्ष ''विवेकानन्द जयंती'' समारोह का आयोजन जनवरी मास में होने लगा।

1966 में ''रामायण के पात्रों पर ऐतिहासिक परिसंवाद'' हुआ ।

1967 -में, रींवा गए-4 व्याख्यान, विवेकानन्द भावधारा के प्रसार से वातावरण बना।

1968 में- रामनवमी के शुभ पर्व पर ''विवेकानन्द आश्रम'' का ''बेलूड़ मठ'' में ''विलय'' हुआ।

तब इसका नाम- ''रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम'' हुआ।

1968 में ही ''मां शारदा की जन्म तिथि'' पर आत्मानन्दजी को परमाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने विधिवत सन्यास प्रदान किया,

स्वामी निखिलात्मानन्दजी के शब्दों में ''मां से बिछुड़ा हुआ पुत्र, पुनः संघ जननी की क्रोड़ में आ गया।''

1968- में, उनके घनिष्ट सहयोगी भी बाद में संघ में प्रवेश पाकर, संन्यास व्रत में दीक्षित होकर कृतार्थ हो गए।

1969- में सीहोर गए,

1970- में ,--देवेंद्र ने मिशन में जीवन 1976 को समर्पित किया,

1971- में सीहोर गए

1972- में,-राजेन्द्र ने भी मिशन में अपने जीवन को समर्पित किया,

1973- में सीहोर गए

1974- में भीषण अकाल,

1976- में मन्दिर की प्राणप्रतिष्ठा

1976- (अगस्त) में, ''दीदी'' (माता) का निधन,

1977- में नरेंद्र को विधानसभा चुनाव लड़ने व राजनीति में जाने से मना किया

1978 में- ''सोनहा बिहान'' देखने महासमुंद गए,-जमीन पर सामान्य लोगों के साथ बैठकर देखे, कमेंट्री नरेन्द्रदेव की थी।

1979(8 सितम्बर) को हृदयाघात से नरेन्द्रदेव की मृत्यु,

1989(27 अगस्त) सड़क मार्ग में -दुर्घटना से जीवन का अवसान- ब्रह्मलीन

आत्मानन्दजी व नरेन्द्रदेव की आयु में- 10 वर्ष का अंतर,

निधन में भी 10 वर्ष का अंतर!

आत्मानन्दजी पहले जन्मे व बाद में गए-60 वर्ष की आयु में,

नरेंद्रदेव बाद में जन्मे व पहले गए- 40 वर्ष की आयु में।

ooo

छब्बीस

श्रद्धांजलि

यह कथा .....

सांस्कृतिक पुनर्जागरण में,
जीवन समर्पण की,
जीवन ज्योति जलाने की
आस्था, विश्वास, स्नेह में पले
प्रबल संस्कार अर्जन की ।

यह कथा .....

माटी का ऋण चुकाने,
छत्तीसगढ़ में नवजागरण लाने,
युवाओं का अभ्युत्थान,
विवेकानन्द की स्मृति जगाने,
ज्ञान-ज्योति जगाने की ।

यह कथा .....

अज्ञान की परत उधेड़ने ,
अंधविश्वास की बेड़ियां काटने,
चहुँ ओर प्रकाश फैलाने,
हृदय तंतुओं को जोड़ने,
सबको एक पंक्ति में बैठाने की ।

यह कथा .....

ऊर्जा बन ज्योति जलाने,
आत्मा में आनन्द प्रवेश दिलाने,
हृदय को विभूति बनाने,
ज्ञानामृत धारा बहाते चले,
जन-जन के मन में बस गये
यह कथा - सत्संग सेतु बनाने की।

--------नमन ---------

सत्ताईस

स्वामी आत्मानन्द जी की स्मृति में शिक्षण संस्थाओं की सूची

स्वामी आत्मानन्द जी की स्मृति में, छत्तीसगढ़ मनवा कुर्मी क्षत्रिय समाज के द्वारा डॉ. खूबचन्द बघेल शिक्षण समिति के माध्यम से ''स्वामी आत्मानन्द विद्यापीठ'' विभिन्न ग्रामों में संचालित हो रहे हैं ।

डॉ. खूबचन्द बघेल शिक्षण संस्था, पंजीयन क्रमां -1175, दिनांक 20.5.2002 स्वामी आत्मानंद विद्यापीठ के समस्त स्कूलों की सूची -

	स्कूल	राज	कक्षा
1.	सिलतरा	धरसींवा	8 वीं अंग्रेजी माध्यम
2.	मोहदी	धरसींवा	8 वीं अंग्रेजी माध्यम
3.	मोरीद	दुर्ग	5 वीं हिन्दी माध्यम
4.	अमेरी	चन्दखुरी	8 वीं हिन्दी
5.	जर्वे	पलारी	8 वीं हिन्दी
6.	भाटापारा	अर्जुनी	8 वीं हिन्दी
7.	देवरी	अर्जुनी	10 वीं हिन्दी
8.	तिल्दा	तिल्दा	8 वीं अंग्रेजी
9.	ताराशिव	तिल्दा	8 वीं हिन्दी
10.	टण्डवा	धरसींवा	5 वीं हिन्दी
11.	मांढर	धरसींवा	5 वीं हिन्दी
12.	गिरौद	धरसींवा	5 वीं हिन्दी

उक्त आत्मानन्द विद्यापीठ के अध्यक्ष, श्री रामकुमार वर्मा, चंदखुरी ग्राम।

सचिव - श्री कृष्णमुरारी वर्मा, तिल्दा नेवरा ।

छत्तीसगढ़ शासन के पंचायत विभाग द्वारा 'आत्मानन्द वाचनालय' प्रत्येक ग्राम पंचायत में संचालित है ।

अभी छत्तीसगढ़ सरकार ने 141 स्वामी आत्मानन्द उत्कृष्ट अंग्रेजी माध्यम उच्चतर माध्यमिक शाला, अनेक स्थानों पर प्रारम्भ करने की घोषणा की है, जो जुलाई, 2021 सत्र से प्रारम्भ हो रहा है ।

०००

जन्मस्थान बरबन्दा आश्रम के सामने स्वामी जी की स्थापित प्रतिमा।

जन्मस्थान बरबन्दा आश्रम
के सामने एक सरोवर।

बरबन्दा ग्राम में प्रतिवर्ष स्वामी आत्मानन्द जन्मोत्सव
कार्यक्रम आयोजित होता है-6 अक्टूबर को ।
बरबन्दा स्वामी जी का जन्मस्थल है।

स्वामी आत्मानन्द जी विभिन्न मुद्राएं
व 1962 में विवेकानन्द आश्रम
स्थापना के समय ली गई फोटो।

स्वामी आत्मानन्द जी का पारिवारिक चित्र-1972

भाई, संन्यासी देवेंद्र
स्वामी निखिलाआत्मानन्द जी

भाई, संन्यासी राजेन्द्र,
स्वामी त्यागात्मानन्द जी

गृहस्थ भाई, डॉ,नरेन्द्रदेव वर्मा,
प्राध्यापक, भाषावैज्ञानिक, कवि
राज्यगीत-अरपा पैरी के धार-के रचयिता!

सबसे छोटे अविवाहित भाई
डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, प्राध्यापक,
सचिव व संचालक- विवेकानन्द
विद्यापीठ, कोटा,रायपुर

गिरीश द्विवेदी
स्वामी करानन्द जी

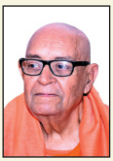

सन्तोष भैया
स्वामी सत्यरूपानन्द जी

मन्दिर
विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (छ.ग.)

प्रवेशद्वार
विवेकानन्दआश्रम,
रायपुर, (छ.ग.)

मन्दिर का प्रार्थना कक्ष
16 मार्च 2021 का दृश्य

विवेकानन्द आश्रम,रायपुर
का ग्रन्थालय।

विवेकानन्द आश्रम,रायपुर ग्रन्थालय
का अध्ययन कक्ष।

नारायणपुर में रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित स्वामी विवेकानन्द एजुकेशन कॉम्प्लेक्स, स्वामी आत्मानन्द जी की कल्पना।

रामकृष्ण मन्दिर का प्रवेश द्वार व अंदर प्रार्थना कक्ष/पूजा गृह।
स्वामी आत्मानन्द की परिकल्पना।

नारायणपुर रामकृष्ण मिशन का अतिथि कक्ष, वर्तमान सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी (कमल महाराज)
31-12-2020

नारायणपुर रामकृष्ण मिशन का विवेकानन्द आरोग्य धाम।
स्वामी आत्मानन्दजी की कल्पना।

विवेकानन्द विद्यापीठ आदर्श आवासी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कोटा, रायपुर (छ.ग.), स्वामी आत्मानन्द जी की परिकल्पना।
वर्तमान संचालक, सचिव - डॉ. ओमप्रकाश वर्मा हैं।

स्वामी आत्मानन्द जी का समाधि स्थल
खारुन नदी के किनारे, महादेव घाट परिसर में।

जन्म-6 अक्टूबर 1929
निर्वाण-27 अगस्त 1989

छत्तीसगढ़ में विवेकानन्द भावधारा के प्रवर्तक स्वामी आत्मानन्द

डॉ. सत्यभामा आडिल

परिचय - पूर्व प्राध्यापिका- हिंदी, शा.दू.ब. महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर, पं. रविशंकर शुक्ल वि. वि. में पूर्व अध्यक्ष-हिंदी अध्ययन मण्डल, कला संकाय, कार्य परिषद सदस्य, पीएच-डी. शोध निर्देशक, 40 शोधार्थियों को इनके साहित्य पर पी.एच-डी. की उपाधि प्राप्त।

प्रकाशित पुस्तकें - **काव्य**-1. नर्मदा की भोर, 2. नि:शब्द सृजन, 3. क्वांर की दुपहरी, 4. काला सूरज, 5. दस्तक देता सूरज, **उपन्यास** - 6. प्रेरणा बिंदु से निर्वेद तट तक, 7. एक पुरुष, 8. **नाटक**- अभिशक्ता, 9. वंशनाम, 10. बुतखाना, 11. **यात्रा वृतांत**- पहाड़ की ढलान से समुद्र की सतह पर, 12. **आलेख संग्रह**- लोकचेतना के स्वर, 13. **शोधग्रन्थ**-सन्त धर्मदास: कबीरपंथ के प्रवर्तक, 14. छत्तीसगढ़ी भाषा, व्याकरण और साहित्य, 15. छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य और नवजागरण, 16. महाकवि खंडेराव भोंसले का महाकाव्य: राधा विनोद, 17. छत्तीसगढ़ी कृति-गोठ, 18. रतिहा पहगे, 19. सुरुज के तसमई, 20 . वेद कहिन, वि, वि, में इनकी लिखित व सम्पादित पाठ्यपुस्तकें एम.ए. व बी. ए. हिंदी साहित्य के पाठ्यक्रम में शामिल हैं।

पुरस्कार व अलंकरण - क्वांर की दुपहरी काव्य संकलन,1976 में म, प्र, शासन से पुरस्कृत, 1978 छत्तीसगढ़ लोक विभूति सम्मान-भारतेंदु शाहित्य समिति बिलासपुर द्वारा ग्राम्य भारती सम्मान, हरि ठाकुर सम्मान,विशिष्ट साहित्य शिखर सम्मान (राज्यपाल द्वारा 2004), अखिल भारतीय सृजन सम्मान-14 सितम्बर 2004, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी साहित्य साधना सम्मान (2005), साहित्य साधना सम्मान (2009,छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग), माधवराव रचना सम्मान (21 जून 2009), डॉ, नरेन्द्रदेव स्मृति अगासदिया सम्मान (2009), टिकेन्द्रनाथ टिकरिहा सम्मान (छत्तीसगढ़ प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा), अखिल भारतीय अमरावती सृजन सम्मान (1 फरवरी 2005-सिली गुड़ी दार्जिलिंग, प. बं.), म. प्र. हिंदी लेखिका संघ द्वारा लोक साहित्य सम्मान-रतिहा पहागे कथा संकलन पर (2010), म. प्र. हिंदी लेखिका संघ द्वारा यात्रा वृतांत-पहाड़ की ढलान से समुद्र की सतह पर पुरस्कृत (2017), छत्तीसगढ़ प्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रदत्त- 'लोकचेतना अलंकरण' (फरवरी 2021), छत्तीसगढ़ी साहित्य महोत्सव में प्रदत्त - 'महानदी शिखर सम्मान' (19 मार्च 2021)।

सम्प्रति - लेखन में सक्रिय

पता - एम. आई. जी.-5, सेक्टर-1, शंकरनगर,
रायपुर (छ. ग.) पिन-492004

मोबा. - 94255 03484